ओ३म्

स्वाध्यायान्मा प्रमदः—स्वाध्याय से प्रमाद न कर

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ऋग्वेद १०।७१

पदार्थः—यः=जो, सचिविदम्=परमेश्वर को प्राप्त कराने या उसका ज्ञान कराने वाले, सखायम्=वेद के स्वाध्यायरूपी मित्र को, तित्याज=छोड़ देता है, तस्य=उस व्यक्ति की, वाचि अपि=वाणी में भी, न भागः अस्ति=कुछ भजनीय नहीं होता, यद् ईम शृणोति=वह जो कुछ सुनता है, अलकम् शृणोति=सब मिथ्या ही सुनता है, और न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्=वह सुकृत के, पुण्य के, मोक्ष के मार्ग को नहीं जान सकता ।

भावार्थ—जो व्यक्ति उस प्रभु को प्राप्त कराने वाले मित्र रूप स्वाध्याय को छोड़ देता है उस व्यक्ति का वाणी में कोई भाग नहीं होता अर्थात् उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती । वह जो कुछ सुनता है मिथ्या ही सुनता है अर्थात् यथार्थ ज्ञान के अभाव में झूठे गुरुडम व असत्य सम्प्रदायों के द्वारा पथभ्रष्ट किया जा सकता है। वह व्यक्ति सुकृत=धर्म व मोक्ष के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता । यतः ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः=यथार्थ ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती ।

स्वाध्याय की महिमा ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, योगदर्शन, मनुस्मृति एवं तैत्तिरीयारण्यक आदि में कही गई है । यथा—

पावमानीर्योऽध्येत्यृषिभिः··· ॥ ऋग्वेद ९।६७।३२ तथा ३१ भी देखें ।
स्वाध्यायो है व परमता काष्ठा । शतपथ ब्राह्मण
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ व्यास
यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं··· ॥ मनु. २।१०७
स्वाध्याय प्रवचन एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ तैत्ति० ७।९।११

इस प्रकार स्वाध्यायरूपी तप के बिना प्रभु की प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

एक सत्यकथा

योग से काया का त्याग

वर्षों पहले की सत्यकथा सुनाते हुए रविवार १ मई, १९९४ के दिन पं० खुशीराम शर्मा ने बतलाया कि उन दिनों वह रामजस कालेज में अध्ययन कर रहे थे। दोपहर के समय समीपस्थ जैन कालेज में एक बड़ी सभा हो रही थी। उस में जैन मुनि संसारचन्द प्रवचन कर रहे थे। जैनमुनि बोले—"इस समय मेरी उम्र ९५ वर्ष की हो गई है, कुछ समय से मेरा शरीर अस्वस्थ रहने लगा है। मिताहार, पथ्य एवं नियमित जीवनचर्या के बावजूद मुझे अनुभूति होने लगी है कि अब इस शरीर के चोले—काया को छोड़ने की वेला आ गई है।"

"भक्तों ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, आप शरीर छोड़ने का विचार भी न करें। आपके सान्निध्य में अनेक भक्तों और समाज का निरन्तर कल्याण हो रहा है।"

मुनि जी ने भक्तों का आग्रह न मानते हुए कहा—"मेरा सारा लम्बा जीवन साधना में व्यतीत हुआ है। मैं यही कह सकता हूँ कि मैं आत्महत्या नहीं कर रहा, मेरी अनुभूति है कि मेरा सारा जीवन साधना और जनकल्याण में व्यतीत हुआ है, इसके बावजूद मैं कह सकता हूँ कि मुझे निर्वाण या मुक्ति नहीं मिलेगी, मेरी यही अभिलाषा है कि मैं पुनर्जन्म में फिर मानवदेह धारण करूँ और उन अपूर्ण दायित्वों और कार्यों को करूँ जो इस जन्म में पूरा नहीं कर सका, इसलिए मेरा यह निश्चय है कि आगामी १० सितम्बर, १९५६ को दोपहर ढाई बजे मैं इस पार्थिव चोले को छोड़ दूंगा।"

"दो दिन बाद ही १० सितम्बर, १९५६ को १० बजे दरियागंज के उस सभास्थल पर पहुंच गया। वहां २०-२५ के लगभग उपस्थिति थी। लगभग दो घण्टे बाद मुनि संसारचन्द जी पधारे। उन्होंने पद्मासन में बैठ कर आंख मूंद कर हल्के मन्द स्वरों में आराधना शुरू की। लम्बी मूक प्रार्थना-आराधना के बाद ठीक दोपहर के ढाई बजे मुनिश्री अपनी उसी ध्यानमुद्रा में सदा के लिए मौन हो गए।"

कविकुलगुरु कालिदास ने रघुवंशियों के जीवन के चार चरणों का उल्लेख करते हुए लिखा था—**शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥** जो बचपन में पढ़ते थे, तरुणाई में संसार का उपभोग करते थे, वृद्धावस्था में मुनियों के समान तपस्या करते थे और अन्त में योग के माध्यम से शरीर छोड़ देते थे।

सचमुच उस दिन योग के द्वारा ब्रह्म में लीन होकर काया छोड़ने की अविस्मरणीय घटना देखी गई।

अभ्युदय, बी-२२,
गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-११००४९ —नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक २] वार्षिक मूल्य : बीस रुपये [सितम्बर १९९४

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक: स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

लघु कथा अङ्क

[दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में 'एकदा' के अन्तर्गत एक प्रेरणाप्रद कथा प्रकाशित होती है, श्री प्रेमचन्द्र आर्य, पानीपत ने उन घटनाओ का संकलन करके वेदप्रकाश के लिए भेजा है। आशा है पाठकों को पसन्द आएँगी और इनसे कुछ प्रेरणा ग्रहण करेंगे। —सम्पादक]

बेरोजगारी और अव्यवस्था

जयप्रकाश नारायण एक दिन पटना से सोखोदेवरा सर्वोदय आश्रम जा रहे थे। उनके साथ जापान से आये हुए उनके एक मित्र भी थे। दोनों आपस में बातचीत करते जा रहे थे। कुछ ही मील दूर गये होंगे कि जे०पी० के जापानी मित्र ने वार्त्तालाप का क्रम तोड़ते हुए कहा, 'आप कहते थे कि भारत गरीब देश है?' जे०पी० बोले, 'हाँ, यह तो है ही। आपने स्वयं नहीं देखा?' मित्र ने कहा कि 'नहीं, मैं नहीं मान सकता।' जे०पी० ने पूछा, 'कैसे? क्यों?' मित्र बोले, 'अभी जिस बगीचे के पास से हम गुज़रे, वहाँ मैंने देखा कि दिन के समय भी लोग आराम से बैठे हैं। फिर तो ये लोग बहुत अमीर होंगें, सम्पन्न होंगे, मौज करते होंगे।' मित्र की इस बात से जे०पी० को शर्म लगी, फिर भी बोले, 'ये लोग इसलिए बैठे हैं कि इनके पास काम नहीं है, ये बेकार हैं।' मित्र ने आश्चर्य से कहा कि 'कोई काम नहीं है? हम पानी पीने गये, तब वहाँ आसपास कितनी गन्दगी थी। क्या उसकी सफाई करने का काम नहीं?' जे०पी० अवाक् रह गये। उनके दिमाग़ में यह घूमने लगा कि बात तो सच है। हम लोग विचार करें तो हमें अपने इर्द-गिर्द काफ़ी काम दिखेगा। लेकिन आज तो निरी अकर्मण्यता ही दीखती है।

नियम-पालन

सन् १९२३ में, गाँधीजी को गिरफ़्तार कर यरवदा जेल में बन्द कर दिया गया। जेल का नियम था कि जब भी कोई व्यक्ति किसी क़ैदी से मिले तो जेल का एक अधिकारी वहाँ अवश्य उपस्थित हो।

एक बार बा गाँधीजी से मिलने आयीं, किन्तु जेलर की उपस्थिति के कारण, वे खुलकर बातचीत नहीं कर पा रहीं थी। यह देखकर जेलर वहाँ से उठकर चला गया।

भेंट का समय समाप्त होने पर जेलर जब वापस लौटा तो उसने गाँधीजी और बा दोनों को चुपचाप बैठे देखा। जेलर ने आश्चर्य से पूछा, 'बापू! आप लोग चुपचाप क्यों बैठे हैं?' गाँधीजी ने सहजभाव से कहा—'आप यहाँ से उठकर चले गये थे और जेल के नियम के अनुसार बातचीत के समय आपकी उपस्थिति अनिवार्य थी। इसलिए मैं बातचीत कैसे कर सकता था।'

जेलर गाँधीजी का उत्तर सुनकर अवाक् रह गया और उनकी ईमानदारी को जीवनपर्यन्त भूल न सका।

ऐसे बना विश्वविद्यालय

एक बार विलायत से कुछ अंग्रेज़ शिक्षा-प्रेमी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को देखने बनारस आये। महामना मालवीयजी ने स्वयं उन लोगों को चारों ओर घुमा-फिरा कर विश्वविद्यालय दिखाया। पर, समयाभाव के कारण मात्र एक इंजीनियरिंग कॉलेज नहीं दिखा सके, क्योंकि उन्हें एक आवश्यक सभा में उपस्थित होना था, अत: साथ में मौजूद एक प्रोफेसर महोदय से उन्होंने उन अंग्रेजों को इंजीनियरिंग कॉलेज दिखा देने को कहा।

प्रोफेसर ने शङ्का व्यक्त की—'सम्भवत: कॉलेज अबतक बन्द हो चुका होगा।'

मालवीयजी ने कहा—'कोई बात नहीं, वहाँ कोई-न-कोई चपरासी तो होगा ही।'

प्रोफेसर महोदय पुन: आशंकित स्वर में बोले—'चपरासी भी शायद ही इस समय वहाँ हो।'

यह सुनकर मालवीयजी ने कहा—'तो कोई बात नहीं, ये लोग बन्द दरवाजों में लगे काँचों से झांककर ही देख लेंगे।'

आगंतुक अंग्रेज़ यह सारा वार्त्तालाप सुन रहे थे। मालवीयजी की इस बात को सुनते ही उनमें से एक कह उठा—'अब मुझे समझ में आया कि इतने विशाल विश्वविद्यालय का निर्माण किस तरह हुआ है!'

वेदप्रकाश

आश्रित का हाल

पीपल का एक बीज किसी तरह नीम की कोटर में पहुँचकर अंकुरित हो गया। धीरे-धीरे वह बढ़ने लगा, परन्तु उसका अधिक विकास नहीं हो पाया। अपने बौनेपन के लिए नीम को ज़िम्मेदार ठहराते हुए पीपल के पौधे ने नीम से कहा—'अत्याचारी। तू मूझे बढ़ने नहीं देता। मेरे हिस्से का भोजन पानी छीनकर तू आकाश छू रहा है। इस अन्याय का दुष्परिणाम भगवान् तुझे तो कभी बताएगा।'

नीम ने कहा—'मित्र औरों पर आश्रित रहनेवाले अपना विकास उतना ही कर पाते हैं, जितना कि तुमने किया है। उससे अधिक करना हो तो तुम नीचे जमीन पर जाओ और अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करो।'

पीपल से कहते तो नहीं बना, वह नीम को ही गालियाँ देता रहा। कुछ दिनों बाद बड़े जोरों की आँधी आयी। नीम का पेड़ थोड़ा ही हिला था कि पीपल कमज़ोर होने के कारण धराशाही हो गया। नीम के आश्रय पर पलनेवाला आखिर वह कबतक ज़िन्दा रहता।

माधुर्य का रहस्य

पथिक ने सरिता से पूछा, 'सरिते! तू इतनी छोटी है, किन्तु तेरा जल कितना मधुर तथा तृप्तिकारक है और वह सागर इतना विशाल है, परन्तु उसका जल खारा है, इसका आखिर क्या रहस्य है?' वेगवती सरिता को किसी की बात सुनने की फुरसत ही कहाँ थी। सरपट दौड़ते-हाँफते उसने इतनामात्र कहा, 'सागर से ही जाकर पूछो।'

क्षितिज तक विस्तृत और गर्जन-तर्जन करनेवाले सागर के पास पथिक गया और उसने उससे वही प्रश्न किया। सागर बोला, 'पथिक, सुनो ध्यान से। सरिता एक हाथ से लेती है, दूसरे हाथ से देती है। वह अपने पास एक पल के लिए भी कुछ नहीं रखती। दूसरों को कुछ देने के लिए ही वह दिन-रात दौड़ती रहती है, किन्तु मैं सबसे केवल लेता हूँ, देता तनिक भी नहीं। यही कारण है कि मेरा संचित जल खारा है।'

पथिक ने समझ लिया कि जो एक हाथ से लेता है और दूसरे हाथ से बाँट देता है, उसी के जीवन में माधुर्य रहता है। संग्रह करनेवाले मनुष्य का जीवन नीरस बनकर रह जाता है।

सच्चा न्यायाधीश

एक दिन भिक्षु श्रावस्ती के उत्तर द्वार के गाँव में भिक्षाटन करके भोजन कर नगर के बीच से आ रहे थे, अचानक बादल आये और वर्षा होने लगी। भिक्षु पानी से बचने के लिए सामनेवाली विनिश्चय-शाला में घुस गये। उन्होंने विनिश्चय-महात्माओं को घूस लेकर सत्य को झूठ

तथा झूठ को सत्य बताते हुए देखा। आकर उन्होंने तथागत से कहा। तथागत ने कहा, 'भिक्षुओ! छन्द आदि के वशीभूत हो, बिना विचार किये न्याय करनेवाले न्यायाधीश नहीं होते, किन्तु दोष को ठीक-ठीक विचार करके दोष के अनुसार न्याय करनेवाले ही न्यायाधीश होते हैं।' कहकर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

बिना विचारे यदि कोई न्याय करता है तो वह न्यायाधीश नहीं। जो पण्डित सच और झूठ दोनों का निर्णय कर विचारपूर्वक धर्म से पक्षपात-रहित होकर न्याय करता है, वही धर्म की रक्षा करनेवाला सच्चा न्यायाधीश कहा जाता है।

शेरनी का दूध

विष्णुशास्त्री चिपलूणकर महाराष्ट्र के देशभक्त थे, किन्तु अंग्रेजी के वे प्रशंसक थे। वे कहा करते थे—'अंग्रेजी तो शेरनी का दूध है।'

एक दिन उनकी यह बात काका कालेलकर ने बापू से कही। बापू ने तत्काल उत्तर दिया—'दुरुस्त है, शेरनी के बच्चे को ही शेरनी का दूध हज़म होगा और लाभ करेगा। आदमी के लिए तो माता का दूध ही अच्छा है। हम अपने को शेर नहीं बनाना चाहते। हमारी संस्कृति की जो विरासत है, वह हमें संस्कृत, हिन्दी और गुजराती के द्वारा मिल ही सकती है।'

देश की इज़्ज़त

स्वामी रामतीर्थ एकबार जापान गये। वहाँ वे रेल यात्रा करते हुए एक शहर से दूसरे शहर जाते। उन दिनों वे अन्न नहीं खाते थे, फलों पर ही निर्वाह करते थे। एक दिन रेलयात्रा के दौरान उन्हें खोजने पर भी फल नहीं मिल सके। स्वामीजी को तीव्र भूख लगी थी। गाड़ी एक स्टेशन पर ठहरी। स्वामीजी ने इधर-उधर नज़र दौड़ाई, किन्तु उन्हें फल नहीं दिखलाई दिये। सहसा उनके मुख से निकल पड़ा—'जापान फलों के मामले में शायद ग़रीब देश है।'

स्वामीजी के डिब्बे के सामने खड़े एक युवक ने उनकी बात सुन ली। वह अपनी पत्नी को रेल में बैठाने आया हुआ था। यह सुनकर वह दौड़ा-दौड़ा स्टेशन के बाहर गया और एक टोकरी में फल लेकर स्वामीजी के पास आया तथा बोला—'ये लीजिए फल, आपको इनकी ज़रूरत है।'

स्वामीजी ने फल लेते हुए पूछा—'इनका मूल्य कितना है?'

युवक ने कहा—'इनका कोई मूल्य नहीं है। ये आपके लिए हैं।'

स्वामीजी ने पुन: मूल्य लेने का आग्रह किया तो वह युवक बोला—'आप मूल्य देना ही चाहें तो आपसे मेरी प्रार्थना है कि अपने देश में जाकर किसी से यह न कहें कि जापान फलों के मामले में गरीब देश है।'

'जिस देश का हरेक नागरिक अपने देश के सम्मान का इतना ध्यान

रखता है, वह देश सचमुच महान है।' स्वामी रामतीर्थजी कह उठे।

स्वभाव और व्यवहार

पुरुषपुर के सेठ परमानन्द के पास एक व्यापारी सौ स्वर्ण मुद्राएँ ऋण पर लेने आया। वह निर्धारित ब्याज भी समय पर देने को तैयार हो गया। सेठजी ने अपने मुंशी को ऋण के कागज़ तैयार करने की आज्ञा दे दी और सौ स्वर्ण मुद्राएँ भी खजांची से मँगवा लीं। तभी उन्होंने व्यवहारवश व्यापारी को चाँदी के वर्कवाला पान प्रस्तुत किया। व्यापारी ने उसे प्रसन्नता से मुँह में डाल लिया।

थोड़ी देर बाद ऋण के प्रपत्र तैयार हो गये और स्वर्ण मुद्राएँ भी आ गयीं। अब सेठ परमानन्द ने अपने पानदान में से सुपारी के मीठे टुकड़े निकालकर व्यापारी को दिये। व्यापारी ने इन्हें भी प्रसन्नता से ग्रहण करके अपने मुँह के हवाले कर दिया। यह देखकर सेठ परमानन्द ने व्यापारी से कहा—'महाशय! क्षमा करें, मैंने अभी अपना विचार बदल दिया है। अब मैं आपको ऋण नहीं दे सकता।'

व्यापारी बहुत हैरान हुआ, वह बोला—'सेठजी! यह तो बड़ी अपमानजनक और अव्यावहारिक बात है।'

सेठ परमानन्द ने उत्तर दिया—''महाशय! मेरा 'व्यवहार' आपके 'स्वभाव' के कारण ही बदला है। अभी आपने पान के मुँह में होते हुए भी सुपारी ग्रहण कर ली। मुझे विश्वास नहीं कि आप स्वर्ण मुद्राएँ लेकर उन्हें बिना और कुछ भेंट लिये वापस करेंगे।''

व्यापारी शर्मिन्दा होकर वहाँ से चलता बना।

जब शिष्य ने गुरु की आँखें खोल दीं

जब कौरव व पाण्डव छोटे ही थे, वे द्रोणाचार्य से शिक्षा ग्रहण करते थे। नीति और धर्म का पाठ पढ़ाते हुए एक बार द्रोणाचार्य ने पाण्डवों को तीन वाक्य याद करने के लिए दिये—सदा सत्य बोलो, धर्म का पालन करो, क्रोध मत करो।

सब कुमारों ने कुछ ही क्षणों में ये वाक्य रटकर गुरुजी को सुना दिये। जब युधिष्ठिर की बारी आयी तो वे विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर गुरु से बोले—'क्षमा करें गुरुदेव! मुझे तो अभी तक दो ही वाक्य याद हुए हैं।'

'क्या मतलब।' द्रोणाचार्य बौखलाये।

'ज्येष्ठ कुमार होकर तू इतना बुद्धिहीन है। इतनी देर में तीन वाक्य याद नहीं कर पाया।' कहते हुए युधिष्ठिर को छड़ी से पीटना शुरू कर दिया।

परन्तु यह क्या बालक युधिष्ठिर के चेहरे पर मलिनता का कोई चिह्न

नहीं था। वे ऐसे मुस्करा रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

द्रोणाचार्य के हाथ रुक गये। उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। वे युधिष्ठिर से बोले—'कौन-से दो वाक्य याद हैं तुम्हें?'

'सत्य बोलना और क्रोध न करना, युधिष्ठिर बोले 'धर्म का पालन करने की क्षमता अभी मुझ में नहीं है गुरुदेव! मैंने आपसे सच बोला था। जिस समय आप मुझे पीट रहे थे तब अपने मन को मैं समझा रहा था कि क्रोध नहीं करना चाहिए। इससे मुझे विश्वास हो गया है कि आज के पाठ की दो बातें मैंने अपने जीवन में उतार ली हैं। तीसरी बात पर अमल करने का पूरा प्रयास करूँगा।'

'युधिष्ठिर!' द्रोणाचार्य की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने छड़ी एक ओर फेंक दी और युधिष्ठिर को चिपटा लिया 'तू मेरा सबसे प्रिय शिष्य है युधिष्ठिर! तूने तो मेरी भी आँखें खोल दीं। पाठ याद करने का अर्थ उसे रट लेनामात्र नहीं है, अपितु उसे अपने जीवन में उतारना है, व्यवहार में उसपर अमल करके दिखाना है।'

आमदनी और व्यय

महाराणा अमरसिंह द्वितीय के देहान्त के बाद मेवाड़ के महाराणा बने संग्रामसिंह न्यायपरायण एवं दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति थे। वे किसी काम को बिना सम्पन्न किये नहीं छोड़ते थे। उनकी विशेषता यह भी थी कि पूर्वयोजना के ही अनुसार खर्च करते थे।

एक बार उन्हें कोटरिया के चौहान सरदार ने पोशाक को और कीमती बना लेने की सलाह दी, तो उन्होंने 'सहर्ष' स्वीकार ली और दीवान को कोटरिया की जागीर से दो गाँवों को जब्त कर लेने का आदेश दिया।

यह बात जब उन्हें पता चली, तो दौड़े-दौड़े महाराणा के दरबार में हाज़िर हुए और उन्होंने अपनी ग़लती का कारण पूछा। महाराणा ने उत्तर दिया कि ऐसा आदेश पोशाक को और मूल्यवान् बनाने के लिए दिया गया है, क्योंकि खर्चे तो तय हैं, अत: आपके सुझाव पर अमल के लिए कुछ अतिरिक्त आमदनी तो चाहिए।

सुनते ही सरदार को बिन माँगे सुझाव की ग़लती का अहसास हुआ और उन्होंने अपने प्रस्ताव को वापस ले लिया।

दान एवं त्याग

अयोध्या नरेश रघु ने विश्वजित नामक यज्ञ में सर्वस्व दान में दे दिया, अत: जब महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स उनके पास आये तो स्वर्णपात्र के अभाव में महाराज ने मिट्टी के पात्र में अर्घ्य रखकर ऋषि का स्वागत, समादर किया। ऋषि कौत्स यद्यपि महाराज रघु की विपुल

सम्पत्ति-वैभव और उनकी अपार दानशीलता से परिचित थे, किन्तु उनकी वर्तमान स्थिति का अनुमान करके उन्हें अपना मनोरथ प्रकट करने में संकोच हुआ।

महाराज के पुन: अनुनय-विनय करने पर ऋषि कौत्स ने कहा—राजन्! गुरुदक्षिणा के रूप में मुझे चौदह कोटि स्वर्ण-मुद्राएँ गुरुदेव को भेंट करने का आदेश हुआ है। इसी अभिलाषा की पूर्ति के लिए मैं आपकी शरण में आया था, किन्तु इसके लिए उपयुक्त अवसर न जानकर मैं अब अन्यत्र चला जाऊँगा। कृपया मुझे अन्यत्र जाने की अनुमति दें। महाराज रघु ने ऋषि कौत्स को अन्यत्र जाने से रोकते हुए कहा—ऋषिवर! आप दो-चार दिन यहीं अतिथिशाला में विश्राम करें। मैं स्वर्ण-मुद्राओं का प्रबन्ध अवश्य करूँगा।

फिर महाराज रघु ने विचार किया—इस धरा पर तो इन स्वर्ण मुद्राओं की व्यवस्था असम्भव है, अत: धनाधिपति कुबेर की राजधानी पर आक्रमण करके उसे उपलब्ध करना होगा। प्रात:काल ऐसा करने का निश्चय कर उन्होंने शस्त्रों से सुसज्जित अपने युद्धरथ में ही रात्रि व्यतीत की।

किन्तु उनके प्रस्थान के पूर्व ही उनकी अजेय कीर्ति गाथा के अनुरूप धनाधिपति कुबेर ने रातों रात उनके कोष-गृह को स्वर्ण-मुद्राओं की वृष्टि से पूरा-का-पूरा भर दिया। अब दानवीर रघु सभी स्वर्ण मुद्राएँ ऋषि कौत्स को देना चाहथे थे, क्योंकि यह अपार स्वर्णराशि उन्हीं के निमित्त थी। त्यागवीर कौत्स गुरु-दक्षिणा के रूप में चौदह कोटि स्वर्ण मुद्राओं से अधिक एक भी मुद्रा स्वीकार नहीं करना चाहते थे। दान और त्याग की इसी अप्रतिम स्पर्धा के कारण वे दोनों विभूतियाँ प्रशंसित हुई अयोध्या-वासियों द्वारा।

पतंगे का भविष्य

राजा रत्नमुकुट अपने निवास में अकेला बैठा था और बैठे-बैठे दीपक की लौ की ओर भी देख रहा था। इतने में एक पतंगा आया और दीपशिखा पर जा गिरा। राजा ने सोचा कि इसके प्राणों की रक्षा की जानी चाहिए। उसने बड़े दयामय मन से उसे पकड़ा और बाहर छोड़ दिया। थोड़ी देर बाद वह फिर से आ गया, राजा ने फिर पकड़ा और फिर छोड़ दिया। इस तरह कई बार ऐसा हुआ। वह बार-बार उसे पकड़ता जाता और बार--बार छोड़ता जाता। तबतक राजा के मन में विचार आया कि "लोग कहते हैं कि उपाय द्वारा रक्षित पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है, अब देखना है कि क्या उपाय द्वारा किसी जीव की रक्षा की जा सकती है अथवा नहीं।" यह सोचकर उसने फिर से पतंगे को पकड़ लिया। अब की बार उसने उस पतंगे को एक सन्दूकची में बन्द कर दिया और

सोचा कि इसे सुबह बाहर छोड़ देंगे। उस समय दीपक भी जल नहीं रहा होगा। इसलिए यह भी उसकी लौ नहीं पाएगा और इसके प्राणों की रक्षा हो जाएगी, परन्तु सन्दूकची खोली तो वहाँ एक छिपकली दिखाई पड़ी। उसने चारों तरफ देखा, लेकिन पतंगा बेचारा कहीं दिखा नहीं। राजा ने सोचा कि ज़रूर यह छिपकली उसे चट कर गयी होगी, पर अब वह कर भी क्या सकता था?

पीड़ा का सुख

एक सीप कराह रही थी। उसके पेट में मोती था। प्रसव पीड़ा उसे कष्ट दे रही थी।

कराह का कारण जानने के बाद सीप की सहेली ने सन्तोष की सांस ली और अपने भाग्य को सराहते हुए कहा कि—'मैं मजे में हूँ, मुझे पीड़ा का झंझट नहीं सहना पड़ा।'

एक बूढ़ा केकड़ा कुछ दूर बैठा-बैठा यह सब देख-सुन रहा था। उसने गर्दन उठाकर देखा और कहा—'आज की पीड़ा से एक सीप को सुन्दर मोती की जन्मदात्री बनना है, लेकिन दूसरी का चैन उसे सदा दरिद्र बनाये रखनेवाला है। वह क्यों नहीं समझती कि पीड़ा ही कष्ट और चैन ही सुख नहीं है।'

पाँच इन्द्रियों का पंजा

कुरंग-मातंग-पतंग-भृंग मीना हताः पंचभिरेव पंच। एक प्रमादी स कथं न हन्यते, यः सैव्यते पंचभिरेव पंच।। अर्थात् मृग, हाथी, पतंग, भ्रमर और मछली, ये एक-एक विषयसुख की प्यास के कारण मारे जाते हैं। मृग संगीत सुनकर दौड़ा चला आता है, कानों के कारण गान-मोहित होता है और मार दिया जाता है। हाथी हथिनी से स्पर्श होगा, इस लोभ के कारण नकली हथिनी के पास जाने के हेतु घास से ढकी खाई में जा गिरता है। पतंगा दीपक की लौ के रूप पर जल मरता है। भौंरा कमल की सुगन्ध पर मुग्ध होकर उसमें बन्द हो जाता है और मछली स्वाद के कारण फँस जाती है। वह आती है खाने आटा और मिलता है वहाँ काँटा। ये पाँचों एक-एक इन्द्रिय (कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका और रसना) के चक्कर में आकर प्राण गँवाते हैं, क्योंकि शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध और स्वाद इन्हीं इन्द्रियों के गुण हैं। जब एक इन्द्रिय के लोभ का यह परिणाम है, तब आदमी क्यों न मारा जाए, जो पाँचो इन्द्रियों की दासता के कारण भटक रहा है।

प्राण ही सब कुछ है

एक बार प्राण और वाणी आदि दूसरी इन्द्रियों में बहस हो गयी। हर इन्द्रिय कहती, 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ।'

सब मिलकर प्रजापति के पास गयीं। प्रजापति ने कहा, 'तुममें से जिसके निकल जाने पर शरीर शव दिखाई दे, वही श्रेष्ठ है।

पहले वाणी गयी। एक वर्ष बाद जब लौटी तो भी शरीर जीवित था, गूँगा। फिर दृष्टि चली गयी। एक वर्ष बाद जब लौटी तो भी शरीर जीवित था, अन्धा। इसके बाद कान बाहर चले गये। एक वर्ष बाद जब लौटे तो भी शरीर चल-फिर रहा था, हाँ, सुनाई उसे कुछ नहीं पड़ता था। तब इसके बाद मन बाहर चला गया। एक वर्ष प्रवास कर चुकने के बाद जब वह लौटा, तो भी शरीर चल-फिर रहा था। मन ने पूछा, 'यह कैसे हुआ?'

तब वाणी ने बताया, 'जैसे छोटा बच्चा बिना मन के भी साँस लेता है, उसी तरह यह शरीर भी जीवित रह गया। अन्त में प्राण ने बाहर जाने की घोषणा की। जिस तरह शक्तिशाली घोड़ा खूँटा उखाड़कर भागने की कोशिश करता है, उसी तरह प्राण वाक्-श्रवण आदि इन्द्रियों को ज़ोर से उखाड़ने लगा। तब घबराकर सब इन्द्रियों ने कहा, 'आप न जाएँ।'

वाणी बोली, 'मैं जो अपने आपको वरिष्ठ समझती थी, वह मैं नहीं, वास्तव में आप ही वरिष्ठ हैं।'

कान ने कही, 'मैं जो संवद कहा जाता हूँ। वह संवद आप ही हैं।

मन ने कहा, 'मैं जो स्वयं को आश्रय समझता रहा, वास्तव में वह आश्रय आप ही हैं'

'प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति॥

वाणी, चक्षु, मन नहीं, सबको प्राण नाम से जाना जाता है, क्योंकि प्राण ही सब-कुछ होता है।

सत्य की महिमा

राजा सत्यव्रत का नियम था कि उसके बाजार में जो चीजें बिकने के लिए आएँ वे यदि दिनभर में न बिक सकें तो साँझ को राजा सदैव उन्हें खरीद लेता था। एक दिन एक लोहार लोहे की बनी हुई शनिश्चर की मूर्ति लाया और कहने लगा कि इसका मूल्य एक लाख रुपये है पर जो कोई उसे खरीदेगा उसे लक्ष्मी, धर्म, कर्म और यश आदि सब छोड़कर चले जाएँगे। मूर्ति बिक न सकी, अतः नियमानुसार साँझ को वह मूर्ति राजा ने खरीद ली। राजा ने अपना नियम नहीं तोड़ा।

आधी रात को एक सुन्दर स्त्री ने आकर राजा से कहा कि 'मैं तुम्हारी राजलक्ष्मी हूँ, तुम्हारे यहाँ शनिश्चर आ गया, अब मैं नहीं रह सकती। मुझे विदा कीजिए।' राजा ने कहा—'जाओ'। इसी प्रकार धर्म, कर्म, यश भी विदा हुए। अन्त में सत्यदेव आये और बोले—'हे राजन्! मैं सत्य हूँ, शनिश्चर के कारण मैं अब नहीं रहूँगा, अतः जाता हूँ। राजा ने उठकर सत्यदेव का हाथ पकड़ लिया और कहा कि लक्ष्मी, धर्म और यश जाएँ

तो भले ही जाएँ, पर आप कहाँ जाते हैं? आपको रखने के लिए ही तो मैंने शनिश्चर की मूर्ति ली है।'

सत्य से उत्तर देते न बना। जब सत्यदेव न गये तो लक्ष्मी, धर्म व यश आदि सब लौट आये।

मनुष्य और मछलियाँ

रामकृष्ण परमहंस एक बार नदी के किनारे टहल रहे थे। उनके साथ उनके कुछ शिष्य भी थे।

नदी में मछुआरे मछलियाँ पकड़ रहे थे। रामकृष्ण जाल में फँसी मछलियों की गतिविधियाँ ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने देखा, कुछ मछलियाँ जाल में निश्चल पड़ी हैं। उन्होंने मानो अपनी नियति स्वीकार कर ली है। कुछ हैं, जो जाल से बाहर निकलने के लिए तड़प रही हैं, लेकिन कोशिशों के बावजूद निकल नहीं पा रही हैं। लेकिन कुछ ऐसी भी हैं, जो अथक प्रयत्न करने पर जाल से मुक्त हो जाती हैं और पुनः जल में क्रीड़ा करने लगती हैं।

रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को बताया कि इन मछलियों की ही तरह तीन प्रकार के मनुष्य भी होते हैं। कुछ हैं, जो संसार के मायाजाल में फँसकर उससे निकल पाने की कोशिश ही नहीं करते, कुछ अन्य लोग संसार से मुक्त होना चाहते हैं, लेकिन उनका प्रयत्न इतना काफी नहीं होता कि वे सांसारिक बन्धनों को तोड़ सकें, लेकिन तीसरे प्रकार के लोग सर्वश्रेष्ठ हैं, जो अपनी साधना से, अपने अथक प्रयास से, सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पा लेते हैं और अपनी वास्तविक आत्मा में अवस्थित होने में सफलता प्राप्त करते हैं।

न्याय का आधार

राम–वनवास के पश्चात् पहली बार भरत ने नन्दिग्राम में दरबार लगाया तो न्याय–प्राप्ति की आशा में आये अभ्यर्थियों की भीड़ लग गयी। राज्याधिकारी ने सबको पंक्तिबद्ध होने का निर्देश दिया और घोषणा की कि 'पहले आओ पहले पाओ' की सर्वमान्य पद्धति के अनुसार जो पहले आया है उसको पहले न्याय प्राप्त होगा। लोग पंक्तिबद्ध होने लगे।

'इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो बेकार हैं, जो स्वस्थ हैं और जो बलवान् हैं, वे ही पहले न्याय प्राप्त कर पाएँगे।' अभ्यर्थियों की भीड़ में खड़े महर्षि जाबालि ने कहा।

'अपनी बात स्पष्ट करने की कृपा करें मुनिवर', राज्याधिकारी ने कहा।

'वत्स, जो बेकार है और जिनके पास व्यर्थ करने के लिए पर्याप्त समय होता है, वही तो प्रातः आकर पंक्ति के आगे खड़ा हो सकता है या जो स्वस्थ है वही तो दौड़कर पंक्ति में आगे खड़ा हो सकता है। जो दूर से आया है, अपने काम में व्यस्त है या जो अस्वस्थ है, वृद्ध है, निर्बल है, वह पहले कैसे आ पाएँगे। इसलिए आपका न्याय केवल स्वस्थ, बलवान् और बेकार व्यक्तियों के लिए ही है।'

बात राज्याधिकारी की समझ में आ गयी। तत्काल निर्देश हुआ अंगहीन, रोगी, वृद्ध और निर्बल व्यक्तियों को पंक्ति में सबसे आगे खड़ा किया जाए।

मूर्ख मण्डल

एक बहेलिए ने जाल में एक ऐसा पक्षी पकड़ा जो सोने की बीट करता था। बहेलिए ने सोचा मैं इस पक्षी का क्या करूँगा, यह तो राजा–महाराजाओं के यहाँ रहने योग्य है और उसने दरबार में जाकर पक्षी राजा को भेंट कर दिया। राजा ने मन्त्री से पूछा—'यह पक्षी सोने की बीट करता है, इसका क्या किया जाए?' मन्त्री ने कहा—'महाराज! इसे छोड़ दीजिए।' राजा ने पक्षी छोड़ दिया। पक्षी राजमहल के बाहर लगे एक पेड़ पर जा बैठा और वहाँ उसने बीट करते हुए यह श्लोक पढ़ा—

प्रथमं तावदहं मूर्खो द्वितीयो पाशबन्धकः।
ततो राजा ततो मन्त्री सर्वं वै मूर्खमण्डलम्॥

अर्थात् पहला मूर्ख तो मैं हूँ, दूसरा बहेलिया, फिर राजा और फिर मन्त्री। सारे का सारा ही मूर्खमण्डल है।

विद्या का पात्र

सत्यकाम एक परित्यक्त बालक था जिसे जबाला नामक एक दासी ने पाला–पोसा था। सत्यकाम में ब्रह्मविद्या सीखने की बड़ी ललक थी।

वह ऋषि हरिद्रुमत के पास गया और निवेदन किया कि मैं एक ब्रह्मचारी की तरह आपके पास रहकर विद्या प्राप्त करना चाहता हूँ।

ऋषि ने पूछा, तुम किस परिवार से हो और तुम्हारा नाम क्या है?

'मैं यह तो ठीक-ठीक नहीं जानता कि मैं किस परिवार का हूँ, सत्यकाम ने कहा, 'किन्तु इस सम्बन्ध में मैंने अपनी माँ से बात की थी और उसने मुझे बताया कि अपनी युवावस्था में उसने घर-घर एक दासी के रूप में काम किया और उन्हीं दिनों मैं उसे प्राप्त हुआ था, अतः वह यह निश्चितरूप से नहीं कह सकती कि मैं किस परिवार से हूँ, किन्तु मेरी माँ का नाम जबाला है, अतः मेरा नाम सत्यकाम जाबाल है।'

सत्यकाम का उत्तर सुनकर ऋषि हरिद्रुमत ने कहा जो व्यक्ति इतना खरा बोल सकता है वह ब्रह्मविद्या का पात्र न हो, यह सम्भव नहीं है। 'जाओ और पवित्रअग्नि लाओ, मैं तुम्हें दीक्षित करूँगा।' ऋषि ने सत्यकाम को आदेश दिया।

तर्क

एक बार चोरी के अपराध में तीन अभियुक्तों को कोसल नरेश सजा देने ही वाले थे कि एक स्त्री 'वस्त्र चाहिए-वस्त्र चाहिए' कहती हुई राजदरबार में आ पहुँची। नरेश ने आज्ञा दी, 'इस स्त्री को चादर दी जाए'। वह स्त्री बोली 'महाराज क्या आपने यह श्लोक नहीं सुना?'

नग्गा नदी अनोदिका नग्गं रट्ठं अराजिकं।
इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो॥

(बिना पानी के नदी नग्न होती है, बिना राजा के राष्ट्र नग्न होता है, विधवा स्त्री नग्न होती है चाहे उसके दस भाई ही क्यों न हों)

राजा ने कहा 'इन तीनों में से कौन तेरा क्या लगता है?'

स्त्री बोली 'देव! एक मेरा स्वामी है, एक पुत्र और तीसरा मेरा भाई है।'

राजा ने फिर पूछा, 'इनमें से किसी एक को मुक्त कर सकता हूँ। बोल किसे मुक्त करूँ?'

स्त्री बोली 'स्वामी तो मुझे दूसरा भी मिल सकता है। उसके मिलने पर पुत्रवती भी हो ही जाऊँगी मगर, क्योंकि मेरे माता-पिता अब इस संसार में नहीं, इसलिए मुझे दूसरा भाई अब कभी नहीं मिलेगा।'

उस स्त्री के तर्क से प्रभावित होकर राजा ने तीनों को मुक्त कर दिया।

मनुष्य को कितना चाहिए

जो राजा अकेला ही समूची पृथिवी पर एकछत्र शासन करता है वह भी अपने राज्य की किसी एक नगरी (राजधानी) में ही निवास करता है। उस नगरी में भी उसका निवास सिर्फ किसी एक ही मकान में होता

है। उस भवन के किसी एक ही कक्ष में उसकी शय्या होती है। उस शय्या के एक ही भाग में उसे सोना पड़ता है, आधे में उसकी अर्धांगिनी सोती है। हर दिन वह अधिक-से-अधिक कुछ मुट्ठी अन्न ही खा पाता है। इस सबके बावजूद वह मूर्ख अपने को समस्त भूमण्डल का मालिक समझता है। यही देहधारियों के दुःख और सन्ताप का कारण है।

हार का सुख

'मुझे तो बड़ी शर्म आती है, प्रभाकर हर बार आपको अपने तर्कों से निरुत्तर कर देता है।' पत्नी ने कहा।

गुरु हँसे और बोले—'यह शिष्य मेरा परम भक्त है और जैसे अपने बालक से हारने में सुख होता है, वैसे ही मुझे इससे हारने में आनन्द आता है।'

'यह तो हार को छिपानेवाली बात हुई।'

'तो ठीक है, कल मैं श्वास खींचकर मुर्दा बन जाऊँगा, जब प्रभाकर आये तो तुम रोने लग जाना।'

दूसरे दिन प्रभाकर ने गुरु पत्नी को रोते देखा तो माथा पीट लिया, जैसे पारसमणि खो गयी हो। उसका विलाप सुना तो गुरु पत्नी ने पूछा—बेटा, तू इतना क्यों रोता है, तूने तो उनसे जो लेना था, वह सब-कुछ पा लिया?'

'नहीं, मेरी भोरी मैया! गुरुजी की विद्या की तो थाह नहीं, वे मेरे तर्कों में रस लेते थे, यह उनकी कृपा थी।'

तभी गुरुजी हँसते हुए उठ बैठे। बोले—'मैं जीत गया।'

प्रभाकर ने सारे मामले को समझा, फिर बोला—'वाह महाराज! मरकर जीते तो क्या जीते?'

आचार्य उदयन

मगध नरेश की राज्यसभा में आचार्य उदयन और बौद्धाचार्य के बीच शास्त्रार्थ चल रहा था। उदयनाचार्य को सिद्ध करना था कि ईश्वर है। बौद्धाचार्य का तर्क था, कि नहीं है। अन्ततः बौद्धों ने कहा—'उदयनाचार्य को अगर ईश्वर पर इतना विश्वास है तो सामने खड़े ताड़ के वृक्ष पर चढ़कर नीचे कूद जाएँ। उदयन अगर बच गये तो हम सब वैष्णव हो जाएँगे।' आचार्य उदयन ने कहा—मैं तैयार हूँ मगर सत्य का ढिंढोरा तो बौद्ध भी पीटते हैं। 'यह सत्य है कि ईश्वर नहीं है, ऐसा कहकर बौद्धाचार्य भी ताड़ पर चढ़कर कूदें।'

हज़ारों दर्शकों के सामने उदयन, ईश्वर को यादकर, ताड़ के वृक्ष से कूदे मगर आश्चर्य, बच गये। इसके बाद बौद्धाचार्य कूदे। लोगों ने देखा इनका शरीर मृत हो गया है। बजाय इसके कि बौद्ध हार मानते,

बौद्धों के दल ने सामूहिक आत्मदाह कर लिया।

उस दिन से आग लगाकर जल मरने की प्रथा बौद्धों में आज तक चली आ रही है।

युधिष्ठिर की बटलोई

जुए में हारने की शर्त पूरी करने की लाचारी, युधिष्ठिर काम्यकवन में भोग रहे थे। कुल पुरोहित धौम्यऋषि ने पूछा—'महाराज। कुछ चिन्तित से प्रतीत होते हो? युधिष्ठिर ने बड़े असहाय स्वर में कहा—'क्या करूँ? इतने सारे ब्राह्मणों को नित्य कहाँ से दान-दक्षिणा-भोजन दूँ।

धौम्यऋषि ने उत्तर दिया—'राजन्! तुम सूर्य भगवान् की उपासना करो वे ही तुम्हारी आवश्यकता पूरी करेंगे। यह कहकर उन्होंने सूर्य के एकसौ आठ नाम बताये जिनसे सूर्यदेव की उपासना करनी थी।

युधिष्ठिर ने गङ्गाजल का आचमन किया और प्राणायाम करके उन्हीं एकसौ आठ नामों से सूर्य का जाप करने लगे। सूर्यदेव प्रसन्न हो गये और युधिष्ठिर से बोले—'सुव्रत! यह मेरी दी हुई तांबे की बटलोई, तुम्हारे रसोईघर में फल-मूल, भोजन करने योग्य अन्य पदार्थ साग आदि जो चार प्रकार की भोजन-सामग्री तैयार होगी, वह तबतक अक्षय बनी रहेगी जबतक द्रौपदी बिना खाये परोसती रहेगी।'

सूर्य से प्राप्त बटलोई से युधिष्ठिर सबको भोजन कराकर तब स्वयं भोजन ग्रहण करते थे। उसके बाद द्रौपदी के खा चुकने के बाद बटलोई रीती हो जाती थी।

[इस कथा का तात्पर्य केवल इतना ही है कि दृढ़ संकल्प से किसी भी कार्य की पूर्ति के लिए कोई-न-कोई समाधान निकल ही आता है।

—सम्पादक]

बदले के लिए नहीं

महाविहार में भिक्षुओं की स्थिति का निरीक्षण करते हुए जब बुद्ध एक कुटिया में पहुँचे तो वहाँ एक साधक रुग्ण अवस्था में मल-मूत्र से सना पड़ा मिला। पूछने पर पता चला कि उसे अतिसार है, कोई अन्य उसकी सहायता करने नहीं आता।

तथागत ने आनन्द से जल माँगकर उसे स्वच्छ किया। उठाकर बिस्तर पर लिटाया और चिकित्सा-व्यवस्था की। साथ ही निकटवर्ती कुटियाओं में रहनेवाले भिक्षुओं को बुलाकर पूछा—कोई उस रोगी की सहायता क्यों नहीं करता?

उत्तर में सभी ने एक बात कही—वह किसी के काम नहीं आता, सदा अकेला रहता है, उपेक्षाभाव बरतता है—फिर कोई क्यों उसकी सहायता करे?

तथागत ने कहा—'अज्ञान का बदला ज्ञान से और संकुचित वृत्ति का सुधार उदारता से होता है'—क्या तुम इतना भी नहीं जानते। क्या तुमने नहीं सुना कि परमार्थ बदले के लिए नहीं अपनी ही करुणा को विकसित करने के लिए किया जाता है।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषत् त्यागः शिष्टाचारेषु नित्यदा॥

वेदों का सार सत्य है, सत्य का सार दम है, दम का सार त्याग है जो शिष्ट पुरुषों के व्यवहार में सदा विद्यमान रहता है।

रोगी कौन नहीं है

जीवन की साधना सफल होने के लिए सबसे पहली बात शरीर की तन्दुरुस्ती है। तन्दुरुस्त शरीर ही साधना कर सकता है, बीमार शरीर नहीं। आयुर्वेद के ग्रन्थों की रचना तथा प्रचार जब ऋषिचरक कर चुके तब वे एक पक्षी का रूप धारण कर वैद्यों की बस्ती में पहुँचे और एक वृक्ष की शाखा पर बैठकर ऊँची आवाज में बोले, 'कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक्? अर्थात् रोगी कौन नहीं है?' पक्षी का स्वर सुनकर वैद्यगण अपनी-अपनी डफली बजाने लगे। ऋषि को इससे बड़ा दुःख हुआ तो नदी-तट पर स्नानार्थ बैठे वाग्भट्ट वैद्य के पास गये और पूछा, 'कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक्?' वाग्भट्ट ने पक्षी को मुखातिब होकर कहा, 'हितभुक्, मितभुक् ऋतभुक्', अर्थात् हमें सात्त्विक भोजन खाना चाहिए जो शरीर के लिए हितकर हो। मितभुक् आहार—भोजन सात्त्विक होने के साथ-साथ सीमित मात्रा में ही खाना चाहिए।

'हितभुक् तथा मितभुक् से ही काम नहीं चलेगा। आदर्श जीवन के लिए ऋतभुक् भी होना चाहिए। इन्सान सात्त्विक भोजन खाये, मर्यादित भोजन खाये, लेकिन हो ऋतभुक्-आहार जैसा। इस आहार का भोजन नेक कमाई के पैसे से पैदा किया गया होता है। पाप की कमाई का अन्न खाने से आत्मा का पतन होता है।'

अध्ययन का महत्व

एक बार चिन राज्य के राजा फ़िङ ने अपने मन्त्री शिख्वाङ से कहा—मैं अब सत्तर व्रर्ष का हो गया हूँ। यद्यपि अध्ययन करने तथा पुस्तकें पढ़ने की लालसा मेरे मन में अब भी बनी हुई है, फिर भी मुझे लगता है कि अब इसके लिए मेरी उम्र नहीं रही।'

शिख्वाङ ने सुझाव दिया—'राजन्! आप दीपक क्यों नहीं बन जाते?'

राजा गुस्से में भरकर बोला—'मैं तो तुमसे गम्भीरता से बात कर रहा हूँ और तुम मुझसे मज़ाक कर रहे हो!'

'ऐसी बात नहीं है राजन्!' शिख्वाङ ने उत्तर दिया। 'मैं तो आपका मन्त्री हूँ। भला आपसे मज़ाक करने का साहस कैसे कर सकता हूँ? मैंने सुना है, यदि कोई आदमी युवावस्था में अध्ययन में रुचि लेता है तो, उसका भविष्य सुबह के सूरज के समान होता है; यदि वह प्रौढ़ावस्था में अध्ययन शुरू करता है, तो उसका भविष्य दीपक की लौ के समान होता। यद्यपि दीपक में अधिक प्रकाश नहीं होता, फिर भी उसका उजाला अँधेरे में भटकने से तो बेहतर ही होता है!'

राजा उसकी बात सुनकर निरुत्तर हो गया।

वाह री तृष्णा

'गन्धार नरेश प्रव्रजित हो गये'—यह खबर सुनकर मिथिला नरेश भी अपना राज्य त्यागकर बौद्ध हो गये। फिर कभी दोनों प्रत्यन्त गाँव के बाहर मिले। दोनों ने वहीं पर्णकुटी बना ली। गाँव के लोग उन्हें भोजन दे देते। ग्राम-निवासी भिक्षा के साथ उन्हें कभी पत्ते में बाँधकर नमक देते कभी न देते।

एक दिन बिना नमक का आहार मिला। गन्धार तपस्वी को मिथिला के तपस्वी ने छप्पर में से नमक निकालकर देते हुए कहा—'आचार्य नमक लें।'

साश्चर्य गन्धार तपस्वी ने पूछा—'आज तो लोगों ने आहार के साथ नमक दिया ही नहीं, तुझे यह नमक कहाँ से मिला?'

'दो दिन पहले लोगों ने ज़रूरत से ज्यादा नमक दे दिया था वही बचा लिया था'—उत्तर मिला।

गन्धार तपस्वी हँसा—'तीन सौ योजन का राज्य छोड़कर तू बौद्ध हुआ, फिर भी नमक की यह डली बचा ली—वाह री तृष्णा।'

राम से माँग

चौदह वर्ष वनवास के बाद राम अयोध्या लौटे तो उनका राजतिलक हुआ। वे सीधे कैकेयी से मिलने गये, जहाँ उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति उपस्थित थीं। राम ने उन तीनों से कुछ भी माँगने हेतु निवेदन किया।

उर्मिला बोली—'आपके और सीता के साथ लक्ष्मण रहे, यही मेरे लिए पर्याप्त है।'

माण्डवी ने कहा—'आपने भरत के प्रति जो प्रेम और विश्वास बनाये रखा, वही मेरे लिए सब-कुछ है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

तब राम ने श्रुतकीर्ति से निवेदन किया कि तुम ही कुछ माँगो। वह बोली—'क्या आप, मैं जो माँगूँगी देंगे?' राम ने बड़े मृदुभाव से कहा—'माँगिए, जो चाहिए।'

श्रुतकीर्ति बोली—'कृपया आप मुझे पेड़ की छाल और बंकल के वे कपड़े दीजिए जो आप १४ वर्ष वनवास के दौरान पहने रहे। मैं रघुवंश के आनेवाले राजाओं को यह बताना चाहूँगी कि देखो! तुम्हारे रघुवंश में एक ऐसा भी राजा हुआ है जिसने पेड़ की छाल और बंकल के कपड़े पहनकर १४ वर्ष वन में बिता दिये।'

अनगढ़े रत्न

एक प्रसिद्ध सन्त के आश्रम में एक राजा उनके दर्शन के लिए आया। राजा ने लक्ष्य किया कि एक निपट अनाड़ी-सा व्यक्ति भी आगन्तुकों में है तथा सन्त से बहुत साधारण से प्रश्न पूछ रहा है। सन्त बड़े प्रेम से उसे समझा रहे हैं। उसके चले जाने पर राजा ने कहा—प्रभो! इस मूर्ख पर आप अपना समय नष्ट कर रहे हैं, क्या यह उचित है? सन्त ने कुछ पल उनकी ओर देखकर कहा—वत्स! तुम्हारे मुकुट में जड़ा यह रत्न बहुत मूल्यवान् दीखता है।

राजा ने कहा—हाँ प्रभो! बहुत महँगा है यह रत्न।

सन्त ने प्रश्न किया—क्या ये रत्न इसी रूप में खान से निकलते हैं?

राजा ने कहा—नहीं, वहाँ तो धूल-मिट्टी में सने, अनगढ़ पत्थर ही होते हैं। उन्हें बड़े श्रमपूर्वक तराशकर, घिसकर यह रूप दिया जाता है।

सन्त बोले—तो वत्स! जिन्हें तुम मूर्ख कहते हो वे अनगढ़ और मिट्टी में सने रत्न ही होते हैं। मैं उन्हें चमकाने का काम कर रहा हूँ।

अपने भाग्य का खानेवाली बेटी

एक राजा के छह बेटियाँ थी। वह उन सभी को खूब लाड़-प्यार करता। एक दिन राजा ने बेटियों से पूछा, 'तुम किसके भाग्य का खाती हो?' पाँच बेटियों ने कहा, 'पिताजी! आपके भाग्य का', किन्तु छठी बेटी बोली, 'अपने भाग्य का।'

राजा ने यह सुनकर अपने को अपमानित अनुभव किया। उसने निश्चय किया कि इसका विवाह किसी दीन-हीन से करूँगा। फिर देखूँगा कि किसके भाग्य का खाती है? राजा ने पाँच बेटियों का विवाह तो राजकुमारों से किया और छठी एक लकड़हारे को दे दी।

छठी लकड़हारे के साथ खुशी के साथ चल दी। वे एक जंगल में कुटी डालकर रहने लगे। एक दिन घर बनाने के लिए लकड़हारा फावड़े से बुनियाद खोदने लगा तो वहाँ उसे एक गड़ा हुआ खजाना मिला। खजाने से राजा की बेटी ने महल बनवाया, नौकर-चाकर रक्खे।

उधर वह राजा, किसी दूसरे राजा के द्वारा परास्त होकर भागा। उसके नौकर-चाकर, सेना, मन्त्री, रानी, खज़ाना—सब-कुछ छूट गया, अतः

वह सूप बेचकर गुजारा करने लगा। एक दिन सूप बेचता हुआ, वह उस जंगल में भी निकल गया, जहाँ अब महल बन गया था, बस्ती बस गयी थी।

बेटी ने पिता को पहचान लिया और अपने महल में लिवा लायी। राजा ने कहा, 'बेटी! तुमने ठीक कहा था, हर आदमी अपने ही भाग्य का खाता है।'

सबके पालक प्रभु

बीजापुर के पास पठारी भूमि पर विशाल दुर्ग बन रहा था। हजारों मजदूर काम पर लगे थे। शिवाजी महाराज स्वयं कार्य का निरीक्षण कर रहे थे। उसी समय समर्थ स्वामी रामदास आते हुए दिखाई दिये। शिवाजी को अपने गुरु के दर्शन से बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा 'गुरुजी! दुर्ग निर्माण होने से लाखों परिवारों का पालन हो रहा है। उन्हें रोटी देनेवाला सिर्फ़ मैं हूँ। स्वामीजी शिष्य के मन में छुपे अभिमान को ताड़ गये। उन्होंने एक विशाल चट्टान की ओर संकेत किया और बोले 'शिवा देख वह शिला है न। उसके दो खण्ड करा दे।' 'जैसी आज्ञा गुरुदेव।' शिवाजी बोले। तुरन्त मज़दूर जुट गये। घन की चोटें पड़ने लगी। शिलाखण्ड के बीचों-बीच एक खाली जगह थी। वहाँ पानी भरा हुआ था। उस पानी से एक मेंढ़क उछल पड़ा। स्वामी रामदास ने पूछा 'देखता है शिवा इस चट्टान के भीतर इसे खाना-पीना कौन देता है।' शिवाजी का अहंकार चूर हो गया। वह समझ गये कि सबके पालक प्रभु हैं। उन्होंने समर्थ स्वामी रामदास के चरणों में अपना माथा टिका दिया।

उजड़ जाओ, बसे रहो

गुरुनानक देव अपने शिष्य मरदाना के साथ घूमते-घूमते एक गाँव में पहुँचे। गाँव के लोग बहुत भले थे। उन्होंने गुरुजी की खूब सेवा की। जितने दिन भी गुरुजी वहाँ रहे, गाँव-वासियों ने उनकी हर सुख-सुविधा का ध्यान रखा। जब गुरुजी वहाँ से चलने लगे तो उन्होंने आशीर्वाद दिया—'उजड़ जाओ।' मरदाना हैरान।

गुरुजी दूसरे गाँव पहुँचे। वहाँ के लोग गुरुजी को देखते ही उन्हें भला-बुरा कहने लगे। न तो किसी ने उनकी आवभगत की और न ही किसी ने उन्हें ठहरने के लिए जगह ही दी। उन्होंने एक पेड़ के नीचे अपना डेरा डाल लिया। गुरुजी देखते कि सभी गाँववासी परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। चलते समय गुरुजी बोले, 'बसे रहो।'

मरदाने से रहा नहीं गया बोला, 'गुरुजी! यह कैसा आशीर्वाद। भले लोगों को 'उजड़ जाओ' और बुरे लोगों को 'बसे रहो।'

गुरुजी बोले, 'मरदाने! भले लोग जहाँ भी जाएँगे, अच्छाई फैलाएँगे

इसलिए उन्हें कहा, 'उजड़ जाओ।' बुरे लोग जहाँ भी जाएँगे और दस लोगों में बुराई फैलाएँगे, इसलिए उन्हें कहा, 'यहीं बसे रहो।'

अभिलाषा

एक राजा की चार रानियाँ थी। राजा परदेश गया। जब लौटने का समय हुआ तो रानियों ने कुछ उपहार लाने का सन्देश भेजा। एक रानी ने हार, दूसरी ने कंगन, तीसरी ने नूपुर मँगवाये। पत्र लिख दिये। चौथी ने अपने पत्र में लिखा—'मुझे आपके सिवा और कुछ नहीं चाहिए।' राजा लौटा तो तीनों रानियों को उनकी अपनी-अपनी वस्तुएँ दीं और चौथी रानी को सब-कुछ दे दिया। जब उनसे इस पक्षपात की शिकायत की गई तो उसने कहा—'किसी को हार की, किसी को कंगन की और किसी को नूपुर की ज़रूरत थी मैंने उनकी ज़रूरत पूरी कर दी, चौथी रानी को मेरी ज़रूरत थी, उसे मैं मिल गया। साथ-साथ मेरा जो कुछ है वह भी उसे सहज ही मिल गया।'

जो व्यक्ति छोटी-छोटी माँगें करता है उसे छोटा मिलता है, किन्तु जब माँग बहुत बड़ी होती है तो छोटी माँगें स्वयं मिल जाती हैं।

सच्चा सेवक

गुरु गोविन्दसिंहजी का मुग़लों के साथ युद्ध चल रहा था। सैनिक युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखा रहे थे। युद्ध में गुरुजी के सेवक भाई गनीया घायलों को पानी पिला रहे थे।

अचानक एक सैनिक की नज़र भाई गनीया पर पड़ी। उसने देखा कि वे तो घायल मुग़लों को भी पानी पिलाते जा रहे हैं, सैनिक भागा-भागा गुरुजी के पास पहुँचा और बोला, 'गुरुजी! भाईजी दुश्मनों को भी पानी पिला रहे हैं। गुरुजी ने भाईजी को बुलाया। पूछने लगे—'क्यों भाईजी! आप दुश्मनों को भी पानी पिला रहे हैं?' भाईजी ने हाथ जोड़कर बड़े भोलेपन से कहा—'सच्चे बादशाह! मुझे तो कोई दुश्मन नज़र नहीं आता। मुझे न कोई अपना लगता है न बेगाना। सब बन्दों में प्रभु का ही रूप नज़र आता है।' उन्होंने भाईजी को छाती से लगा लिया और बोले—भाईजी! आप ठीक कहते हैं। फिर वह अन्दर कमरे में गये और भाईजी को एक मलहम की डिबिया देते हुए बोले—'भाईजी! आप भविष्य में पानी पिलाने के साथ-साथ घायलों को मलहम भी लगा दिया करना।'

बड़ा कौन

ज़ेनरिन कुशू ने, एक शाम घोषणा की कि उसके निर्वाण का क्षण नज़दीक आ रहा है। उस रात उसके दो शिष्यों के मन में विहार-प्रमुख बनने की चाहना पैदा हो गयी। एकाएक दोनों लड़ने लगे। पहला कहता

मेरी आयु भी अधिक है और अनुभव भी। दूसरा, कहता शरीर की आयु, कोई आयु नहीं, महत्त्व इस बात का है कि पहले कौन जागा।

प्रत्यूष वेला में दोनों कुशू के पास पहुँचे, 'आचार्यवर! हम दोनों में से कौन बड़ा है, कृपया निर्णय दें।'

'तुम दोनों में से जो दूसरे को अपने से बड़ा माने वह बड़ा।' उत्तर मिला।

आत्मजगत्

ऋषि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा—

'हे श्वेतकेतु! इस वटवृक्ष का एक फल ले-आ।'

'भगवन्! ले आया।'

'इसे तोड़ डाल।'

'भगवन्! तोड़ डाला।'

'इसमें क्या देखता है?'

'भगवन् बहुत-से सूक्ष्म बीज दिखायी देते हैं।'

'इन बीजों में से एक को तोड़ डाल।'

'भगवन्! तोड़ डाला।'

'इसमें क्या दिखायी पड़ता है?'

'भगवन्! इसमें कुछ दिखाई नही पड़ता।'

पिता उद्दालक ने कहा—इस सूक्ष्म वटबीज के जिस अति सूक्ष्म भाव को तू नहीं देख सकता, उसी में इतना विशाल वटवृक्ष स्थित है।

हे सौम्य! 'श्रद्धाकर—वह सूक्ष्म भाववाला जो आत्मजगत् है वह सत्य है और हे श्वेतकेतु! तू भी वैसे ही सत्य है।'

चिन्ता का अन्त

एक दिन की बात है कि चाणक्य की माता रोने लगीं। चाणक्य ने अपनी माँ से पूछा—माँ! तुम क्यों रोती हो?'

माता ने उत्तर दिया—

'प्रिय पुत्र! तुम्हारे भाग्य में छत्र धारण करना लिखा है। तुम छत्र धारण करने और राजश्री प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? परन्तु राज्य प्राप्त करके राजकुमार प्रायः अपने कुटुम्बियों को भूल जाते हैं। मेरे पुत्र! क्या तुम भी मुझे और मेरे प्रेम को भूल जाओगे? यदि ऐसा हुआ तो मुझे बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ेगा। मैं इसी सम्भावना से रो रही हूँ।'

यह सुनकर चाणक्य ने पूछा—

'माँ! मेरे कौन से अंग पर श्री अंकित है।'

माता ने उत्तर दिया—

'मेरे प्रिय पुत्र! तुम्हारे सामने के दो दाँतों पर।'

यह सुनकर चाणक्य ने उसी समय सामने से पत्थर उठाकर अपने दाँत तोड़ दिये और मुस्कराकर कहा—

'लो माँ! अब तो तुम्हारी चिन्ता दूर हुई। मैं कभी राजश्री का उपभोग नहीं करूँगा।'

सच्चा तपस्वी

एक राजा आखेट के लिए वन में गये। वहाँ उन्होंने घोर तपश्चर्या में लीन एक ऋषि को देखा। ऋषि की चरण वन्दना कर राजा ने पूछा—'भगवन्! आप इस निर्जन वन में कब से निवास कर रहे हैं?'

'बारह वर्षों से'—उत्तर मिला।

'किन्तु यहाँ खाते क्या हैं? सोते कैसे हैं?'—राजा ने पूछा।

'फल-मूल खाकर पेट भर लेते हैं? वृक्ष की छाल पहनते हैं और तृण-शय्या पर सो रहते हैं। ऋषि ने उत्तर दिया।

राजा को इस कठोर जीवनचर्या की बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

'धन्य हैं, महर्षि! आपने वस्तुतः इन्द्रियों को जीत लिया है।'

'नहीं राजन्! जब कभी रतिक्रीड़ा में लगे पशु-पक्षियों को देखता हूँ, तो मन में राग उत्पन्न हो जाता है। इस दुर्बलता को जिस दिन जीत सका, उसी दिन सच्चे अर्थों में तपस्वी-ऋषि कहलाने योग्य बनूँगा।'

जीवन रस

एक ब्राह्मण भटकता हुआ एक अत्यन्त भयावह वन में जा पहुँचा। हिंस्र पशुओं से बचता हुआ इधर-उधर भागने लगा। उसने देखा वन के चारों ओर एक महाजाल है, जिसे एक भयंकर स्त्री ने अपनी बाँहों में समेट रखा है। भागते-भागते वह लताओं से ढँके एक कुँए में गिर पड़ा। नीचे एक भयानक सर्प फुँफकार रहा था। ब्राह्मण नीचे नहीं पहुँचा। लता-वितान में उलझकर उलटा लटक गया। तभी एक और उपद्रव उठ खड़ा हुआ। छह मुख और बारह पैरोंवाला एक विशालकाय हाथी उस कुँए की ओर बढ़ा चला आ रहा था। कुँए के बाहर पेड़ पर भीषण मधुमक्खियों का छत्ता था जिससे मधु की धार झर रही थी। उलटे लटके ब्राह्मण के मुख में भी उस मधु की अमृत बूँदें टपक रही थीं। उसने देखा कि जिस लता से वह लटक रहा था उसे सफेद-काले चूहे कुतर रहे थे।

इस तरह छह भीषण खतरों में घिरे रहकर भी वह मधु के लोभ से जीवन की आशा नहीं छोड़ पा रहा था।

प्रेम-से-प्रेम

सूफी सन्तों में राबिया नाम की एक बहुत ऊँची सन्त थी। वह सबको दिल खोलकर प्यार करती थी। जानवरों पर भी प्रेम बरसाती थी।

एक बार वह घूमती हुई जंगल में गयी और एक सुनसान जगह पर बैठ गयी। देखते-देखते पशु-पक्षियों ने उन्हें घेर लिया। कुछ पक्षी उनके बदन पर बैठ गये। इतने में एक दूसरे सन्त हसन वहाँ आये। राबिया को जानवरों से घिरा देखकर बड़े खुश हुए, लेकिन जैसे ही वह राबिया के पास पहुँचे, सारे पशु-पक्षी भाग गये। हसन को बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने राबिया से कहा, 'यह मामला क्या है?'

राबिया ने पूछा, 'तुम क्या खाते हो?'

हसन ने कहा, 'गोश्त। पर उससे क्या?'

राबिया बोली, 'मेरे भोले भाई! जिन्हें तुम मारकर खाते हो, उनसे कैसे उम्मीद कर सकते हो कि वे तुम्हें प्रेम करें? याद रक्खो, प्रेम-से-प्रेम होता है।'

चिरकारी

गौतम के पुत्र चिरकारी हर काम अच्छी तरह सोच-समझकर करते थे। एक बार उनके पिता ने उससे कहा—'तुम्हारी माँ ने धर्म का अतिक्रमण किया है, उसका बध कर दो।'

चिरकारी सोच में पड़ गये। पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का परम धर्म है, किन्तु माता की रक्षा करना भी स्वधर्म है। जब ये दोनों धर्म आपस में टकरा जाएँ तब किस धर्म का पालन करना उचित है? उन्होंने विचार किया कि जबतक पुरुष स्त्री का भरण-पोषण करता है, तभी तक भर्त्ता होता है। जबतक रक्षा करता है, तभी तक पति होता है। जब वह अपनी स्त्री की रक्षा न करे तो पति कैसा? और फिर स्त्री का तो अपराध नहीं, पुरुष ही अपराधी होता है। तब निरपराध माँ की हत्या, वह भी उसकी रक्षा न कर सकनेवाले पति की आज्ञा से, करना उचित नहीं होगा। यह सोचकर चिरकारी ने माँ की हत्या नहीं की।

उधर गौतम का भी आवेश शान्त हुआ। उन्हें लगा जल्दी में स्त्री के वध का आदेश देना ठीक नहीं था। दौड़े-दौड़े आये तो स्त्री को जीवित देखा। प्रसन्न होकर पुत्र को आशीर्वाद दिया और कहा कि उद्वेग में, शीघ्रता से कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। विशेषकर अपने प्रिय बन्धुओं, मित्रों, भृत्यों और स्त्रियों के अपराध पर निर्णय विचार-विमर्श के बाद ही करना चाहिए।

अन्तिम अवसर

अपने प्रेरणास्रोत पूज्य श्री विजयकुमारजी की पुण्य स्मृति में
महत्त्वपूर्ण घोषणा और दृढ़ संकल्प

चारों वेदों, मूल संहिताओं का
भव्य प्रकाशन

इस समय चारों वेदों का मूल्य ३२०-०० रुपए है। हम एक जिल्द में चारों वेद केवल २५०-०० में देंगे। यह मूल्य लागतमात्र है। प्रकाशित होने पर मूल्य ५००.०० होगा। इस ग्रन्थ की विशेषताएँ—

- ¤ शुद्धतम प्रकाशन। स्वामी गंगेश्वरानन्द जी द्वारा प्रकाशित वेदों में भी अशुद्धियाँ हैं। १. **पं० रामनाथ जी वेदालंकार**, २. **पं० भीमसेनजी शास्त्री**, व्याकरण के विशेष विद्वान्, ३. **पं० सत्यानन्द जी वेदवागीश**, स्वर के विशेषज्ञ, ४. **पं० सत्यकाम जी वर्मा, विद्यालंकार**, आदि अनेक विद्वानों के सहयोग से इसे शुद्धतम छापा जाएगा।
- ¤ आधुनिक लेजर कम्पोजिंग से बहुत बढ़िया टाइप में मुद्रण होगा।
- ¤ बढ़िया कागज, कलापूर्ण मुद्रण, पक्की जिल्द। सभी प्रकार से एक भव्य और नयनाभिराम प्रकाशन होगा।
- ¤ १४ प्वाइण्ट में २३×३६/८ अर्थात् ११ इञ्च×१९ इञ्च साइज में मुद्रित होगा।
- ¤ अकारादिक्रम से मन्त्रों की सूची भी संलग्न रहेगी।
- ¤ दो रंग में छपाई होगी।

इस ग्रन्थ के प्रमुख सम्पादक होंगे आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, अनेक ग्रन्थों के लेखक एवं सम्पादक **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती**।

दिसम्बर १९९४ में श्री विजयकुमार जी की पुण्यतिथि पर यह ग्रन्थ प्रकाशित हो जाएगा।

प्रेषण-व्यय—एक प्रति पर लगभग २०-०० पृथक् से देना होगा। जो व्यक्ति दुकान से लेंगे, उन्हें यह राशि नहीं देनी होगी।

इस प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत हमने यह ग्रन्थ लागत मूल्य (२५०.०० रु० मात्र) पर ही आर्य बन्धुओं को उपलब्ध कराने का संकल्प लिया था।

हमें खुशी है कि इस योजना का लाभ उठाते हुए कई आर्य बन्धुओं व अनेक आर्यसमाजों ने कई-कई सैट बुक कराए।

अब यह अन्तिम अवसर है, यदि आप इस योजना का लाभ उठाना चाहते हैं तो २५०.०० रु० हमें ३० सितम्बर, १९९४ तक अवश्य भेज दें। इसके बाद बननेवाले ग्राहकों को ३२५-०० रु० देने होंगे।

—अजय आर्य

अनीति पर कुठाराघात

सामाज में फैल रही अनीति और भ्रष्ट आचरण से चिंतित हर व्यक्ति नैतिक शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव करता है। विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को शामिल करवाने की बात भी यदाकदा कही जाती है परन्तु इस दिशा में प्रभावी पग उठाना अभी भी शेष है।

पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर, आगम कथाएँ और जातक कथाओं जैसे आदिम कथास्रोत में नैतिक शिक्षा अभिन्न रूप से जुड़ी रही है। इसी परम्परा की एक कड़ी के रूप में आज के परिवेश एवं आवश्यकताओं के अनुरूप एक पुस्तक आई है 'प्रेरक बोध कथाएँ'। यह पुस्तक छात्रों व अभिभावकों के समक्ष उपस्थित एक शून्य को भरने का प्रयास कर नैतिक एवं आचार शिक्षा की दिशा में एक नवीन दिशा-निर्देश का महत्त्वपूर्ण कदम है। यह पुस्तक समाचारों और विचारों के गुरुगम्भीर व शुष्क वातावरण में ऐसी रोचक, आकर्षक व मनोहर कथाएँ व प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत करती है कि पाठक सहज ही आकर्षित होता है। कथाओं का लघु रूप पुस्तक-विमुख वर्ग को भी पढ़ने के लिए आकर्षित करने व ललक जगाने में समर्थ है। इस छोटी-सी पुस्तक में १३८ हृदयस्पर्शी प्रसंग देकर गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया है।

ये प्रेरक प्रसंग न केवल भारत के महापुरुषों के जीवन से जुड़े हुए हैं, वरन् विदेशी महापुरुषों के जीवन की व उनके जीवन मूल्यों की झलक भी देते हैं। पुस्तक की परिधि में महापुरुष ही नहीं हैं, साधारण समझे जानेवाले व्यक्तियों के जीवन-प्रसंगों से लेकर व उपनिषदों तक के प्रेरक प्रसंग हैं। देश-विदेश के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकारों से जुड़े प्रसंग भी पुस्तक का एक आकर्षण हैं। ये तमाम प्रसंग नीति एवं ज्ञान को कैप्सूल सुलभ व सुविधाजनक रूप में प्रस्तुत करते हैं। पुस्तक विनम्रता, ईमानदारी, भाईचारे, मानवता, परिश्रम व स्वाभिमान जैसे अनेक सद्‌गुणों को अपनाने की प्रेरणा देते हुए सच्चे आनन्द का भी मार्ग दिखाती है। स्वामी रामतीर्थ, बालगंगाधर तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डा० सत्यकेतु विद्यालंकार व महाराज एकनाथ के जीवन प्रसंग अत्यंत प्रेरक हैं।

पुस्तक के लेखक नरेन्द्र विद्यावाचस्पति प्रतिष्ठित पत्रकार व अनुभवी समाज सेवी हैं। उन्होंने पुस्तक के लिए इन प्रसंगों के चयन व प्रस्तुतिकरण में विविधता का ऐसा समावेश किया है कि पाठकों के हर वर्ग के लिए इसमें कुछ न कुछ आकर्षण मिलेगा।

● डॉ० कैलाशचन्द्र पपनै

समीक्षित पुस्तक : प्रेरक बोध कथाएँ;
लेखक : नरेन्द्र विद्यावाचस्पति;
प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६
मूल्य १५ रुपए; पृष्ठ १६० ।

नयी प्रकाशित पुस्तकें

विदुर नीति : जगदीश्वरानन्द सरस्वती। अब तक प्रकाशित संस्करणों में सर्वश्रेष्ठ; मूल संस्कृत पाठ का शुद्धतम रूप, विशद भावार्थ, जहाँ आवश्यक वहाँ 'विशेष' वक्तव्य, अनेक स्थानों पर पाठ-भेद दर्शाये गए हैं तथा अंगरेजी-अनुवाद भी किया गया है। मूल्य : ४०-००

त्यागमयी देवियाँ : महात्मा आनन्द स्वामी। त्याग और सेवा की मूर्तियाँ : पार्वती, सीता, पद्मिनी की जीवनियों को जो भी पढ़ेगा, मुग्ध होगा! स्वामीजी के कहने का ढंग अनोखा है और वह सीधा आत्मा को छू लेता है। मूल्य : ८-००

सन्ध्या रहस्य : पं० विश्वनाथ विद्यालंकार। सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न स्थलों में सन्ध्या-मन्त्रों की जो पद्धतियाँ बिखरी पड़ी हैं उन सबका संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। सन्ध्या के मन्त्रों की व्याख्या से गूढ़ भावों को स्पष्ट किया गया है। मूल्य : २५-००

प्रेरक बोध कथाएँ : नरेन्द्र विद्यावाचस्पति। इस संकलन की कथाएँ जितनी वामन (लघु) हैं, उनका उद्देश्य और प्रभाव उतना ही विराट् एवं व्यापक है। प्रत्येक कथा अपनी अमिट छाप छोड़ती है और पाठक को वैसा ही कुछ करने के लिए यत्नशील बनाती है। मूल्य : १५-००

घर का वैद्य—धूप-पानी : सुनील शर्मा। सृष्टि के दो प्रमुख आधार हैं 'धूप' और 'पानी'। सूर्य-किरणों में जो सात रंग झलकते हैं, उन रंगों की भाषा और गुण जानकर यदि उन्हें जल में समो लें तो असंख्य रोगों से मुक्ति मिल सकती है। आप इसे पढ़कर वैद्यराज बन सकते हैं और बहुतों का भला कर सकते हैं। मूल्य : १५-००

हमारे बालनायक : सुनील शर्मा। उत्सर्ग और कर्मठता को प्रेरित करनेवाले किशोर बालनायकों की ये ऐसी जीवनियाँ हैं जो अपने-अपने समय में इतिहास-पुरुष बन गए। इसमें सम्मिलित हैं : आरुणि, शतमन्यु, एकलव्य, श्रवण, अभिमन्यु, हकीकतराय व हरिसिंह नलवा की जीवनियाँ। मूल्य : ८-००

देश के दुलारे : सुनील शर्मा। देश की आज़ादी के लिए अपने जीवन भेंट चढ़ानेवालों के संघर्ष पर ध्यान दें तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि रोमांचक साहित्य ही बच्चों को प्रिय है तो उन्हें प्रह्लाद, कृष्ण-सुदामा और चन्द्रहास जैसे धीर-वीर नायकों और बादल, करतार सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल और भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों की जीवनियाँ पढ़ने को दें। मूल्य : ८-००

हमारे कर्णधार : सुनील शर्मा। भारतीय राष्ट्र-निर्माताओं के पुण्य जीवन की मार्मिक झाँकियों से पूर्ण यह ऐसा संकलन है जिसे आप चाव से अपने बच्चों को पढ़ने के लिए देना चाहेंगे। इसमें सम्मिलित हैं : महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, चन्द्रशेखर आज़ाद, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस। मूल्य : ८-००

आदर्श महिलाएँ : नीरू शर्मा। भारतीय नारियों के तप और त्याग, सतीत्व और नारीत्व, कर्त्तव्य और बलिदान की ये अनूठी और आदर्श जीवनियाँ सभी आयु और प्रत्येक वर्ग के पाठक को मुग्ध कर देंगी। इसमें सम्मिलित हैं : शैव्या (तारामती), विदुला, पद्मा, अहिल्याबाई, दुर्गा, राजबाला, पन्ना, रत्नावती, लक्ष्मीबाई। मूल्य : ८-००

कथा पच्चीसी : स्वामी दर्शनानन्द। स्वामीजी वेदों और दर्शन-शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं प्रकाण्ड विद्वान् थे। ये हृदयग्राही कथाएँ उनकी लेखनी का ऐसा चमत्कार हैं जो प्रत्येक आयु के पाठक को अच्छे और ऊँचे संस्कार प्रदान करती हैं। मूल्य : ८-००

महर्षि दयानन्द चरित : देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय। अनुवादक : पं० घासीराम। लेखक ने १५ वर्ष तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके जहाँ-जहाँ ऋषि गये थे, वहाँ जाकर, जिन-जिन लोगों से मुनि मिले थे, उन-उनसे मिलकर उनके जीवन की सामग्री एवं घटनाओं का संकलन किया था। मूल्य : २५०-००

वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द : प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। आर्यसमाज के निर्माता लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द की यह बालोपयोगी, प्रामाणिक व प्रेरणाप्रद पावन जीवनी युवक-युवतियों का मार्गदर्शन करेगी। मूल्य : ४-५०

देवतास्वरूप भाई परमानन्द : प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। भाईजी उच्च कोटि के विचारक, सुधारक, तपस्वी, बलिदानी, शिक्षाशास्त्री व लेखक थे। उनकी यह बालोपयोगी जीवनी बच्चों को नई दिशा दिखाएगी। मूल्य : ५-५०

बहुत दिनों बाद प्रकाशित पुस्तकें

चाणक्यनीतिदर्पण : स्वामी जगदीश्वरानन्द। भारतीय और पाश्चात्य सभी विद्वान् चाणक्य की कूटनीति और राजनीति का लोहा मानते हैं। चाणक्य का यह ग्रन्थ केवल राजनीति का विवेचन ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु यह धर्मनीति में भी अपना सानी नहीं रखता। प्रत्येक श्लोक का शब्दार्थ एवं भावार्थ दिया गया है। प्रक्षिप्त श्लोकों का निर्देश कर दिया गया है। मूल्य : ६०-००

मर्यादा पुरुषोत्तम राम : स्वामी जगदीश्वरानन्द। पुस्तक में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन की दिव्य एवं पावन झाँकी है। श्रीराम के सम्बन्ध में उठनेवाली सभी शंकाओं का समाधान है। यदि आप अपने पुत्रों तथा पुत्रियों को आदर्श एवं मर्यादापालक बनाना चाहते हैं तो यह पुस्तक उनके हाथ में दे दीजिए। मूल्य : १२-००

चतुर्वेदशतकम् : स्वामी जगदीश्वरानन्द। प्रत्येक वेद से अलग-अलग चुने हुए सौ-सौ मन्त्रों का संकलन किया गया है, और साथ ही उनका सरल पदार्थ व भावार्थ दिया गया है। वेद-परिचय प्राप्त करनेवालों के लिए ये शतक उपादेय हैं। मूल्य : ५०-००

ब्रह्मचर्य सन्देश : सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार। ब्रह्मचर्य क्या है और इसके धारण करने के लाभ संस्कृत के इस श्लोकांश से स्पष्ट हो जाते हैं—'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत', अर्थात् ब्रह्मचर्य के तप से ज्ञानी लोग मृत्यु को भी परास्त कर देते हैं। विद्वान् लेखक ने इस विषय पर बड़ी रोचक और उपयोगी व्याख्या की है। मूल्य : २५-००

श्रीमद्भगवद्गीता : अनु० सत्यपाल वेदालंकार, सम्पा० सन्तोष कुमार वेदालंकार। गीता के समस्त श्लोकों का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक की विशेष भूमिका। गुत्थियों को सुलझानेवाला एक विशेष संस्करण। अकारादि क्रम से श्लोकों की सूची सहित। मूल्य : १५-००

गीता सागर : पं० नन्दलाल वानप्रस्थी। आर्यसमाज के अनेक कवियों व भजनोपदेशकों की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन। भजनों व गीतों में ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना, अछूतोद्धार, देशभक्ति, समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा, पाखण्ड-खण्डन आदि का समावेश। मूल्य : २५-००

वेद भगवान् बोले : पं० विष्णुदयाल (मॉरीशस)। वेद वैदिक संस्कृति का मूलाधार हैं। संसार में जितना ज्ञान-विज्ञान, विधाएँ और कलाएँ हैं, उन सबका आदि-स्रोत वेद हैं। मॉरीशसवासी पं० विष्णुदयाल के वेदों पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह। मूल्य : १५-००

दयानन्द चित्रावली : पं० रामगोपाल विद्यालंकार। महर्षि दयानन्द की जीवन-घटनाओं से सम्बन्धित बड़े साइज के ३० से भी अधिक रंग-बिरंगे चित्रों से सुसज्जित। ऋषि की प्रभावशाली उपदेशप्रद घटनाओं का वर्णन भी बड़े अक्षरों में किया गया है जिससे ऋषि के जीवन-चरित को सुगमता से हृदयङ्गम किया जा सकता है। पाठशाला में विद्यार्थियों को पुरस्कार देने योग्य। कई रंगों का अनोखा आवरण। मूल्य : २५-००

याज्ञिक आचार संहिता : पं० वीरसेन वेदश्रमी। लेखक ने वर्षों अनुसन्धान कर यज्ञ के सम्बन्ध में उठनेवाले प्रश्नों का समाधान इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। मूल्य : ४५-००

विवाह और विवाहित जीवन : पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय। विवाह तथा विवाहित जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों पर इस ग्रन्थ में बड़ा रोचक विश्लेषण है। यह पुस्तक नई-नवेली दुल्हन से भी सुन्दर और रोमांचक है। मूल्य : १८-००

शीघ्र प्रकाश्य

आर्यसमाज के बीस बलिदानी : डॉ० भवानीलाल भारतीय। आर्यसमाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ जानेवाले बीस आर्यों की संक्षिप्त बालोपयोगी जीवनियों का संकलन। पुरस्कार-उपहार में देने योग्य।

आचार्य गौरव : ब्र० नन्दकिशोर। आचार्य-शिष्य-सम्बन्धों की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत की गई है। जहाँ शिष्यों को कर्तव्य-बोध कराया गया है, वहीं आचार्यों को राष्ट्र-निर्माण की दिशा भी दर्शाई गई है।

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे : स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। 'आदि शंकराचार्य भूलतः अद्वैतवादी नहीं थे' ऋषि दयानन्द द्वारा सत्यार्थप्रकाश में संकेतित इस विचार की पुष्टि में एक छोटा ग्रन्थ।

तपोधन महात्मा नारायण स्वामी : प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु—महात्मा जी उच्च कोटि के विचारक, सुधारक, महात्मा योगी व लेखक थे। युवक-युवतियों के लिए ऐसा स्वनिर्मित जीवन एक प्रेरणा-स्रोत है।

Bodh Kathayan : Mahatma Anand Swami. Translation of Swamiji's book बोध कथाएँ।

How to lead life : Mahatma Anand Swami. Translation of Swamiji's Book दुनिया में रहना किस तरह?

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१२-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२०-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Discourses	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	In Press

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१५०-००
षड्दर्शनम्	प्रेस में
चाणक्यनीति दर्पण (सजिल्द)	१००-००
,, ,, (अजिल्द)	६०-००
विदुरनीतिः (सजिल्द)	८०-००
,, ,, (अजिल्द)	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	८-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामदेव सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामदेव शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	८-००

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
दयानन्द जीवन चरित	लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८००-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	२४०-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु	६६०-००
चयनिका	क्षितीश वेदालंकार	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	पं० रामनाथ वेदालंकार	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५०-००
वेद-मीमांसा	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	डॉ० भवानीलाल भारतीय	६०-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	६०-००
धर्म का स्वरूप	डॉ० प्रशान्त वेदालंकार	५०-००
ऋषि बोध कथा	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	१०-००
वैदिक धर्म	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	१५-००
सहेलियों की वार्ता	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२०-००
सन्ध्या रहस्य	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो	प्रो० रामविचार एम० ए०	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	ओम्प्रकाश त्यागी	६-००
पूर्व और पश्चिम	नित्यानन्द पटेल	३५-००
सन्ध्या विनय	नित्यानन्द पटेल	६-००
भगवत् भजन जरूरी है	नित्यानन्द पटेल	१-५०
गीत सागर	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	२५-००
वेद भगवान बोले	पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	पं० नरेन्द्र	१५-००
आचार्य शंकर का काल	आ० उदयवीर शास्त्री	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	पं० वीरसेन वेदश्रमी	४५-००
प्राणायाम विधि	महात्मा नारायण स्वामी	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	१५-००
वेद परिचायिका	डॉ० कृष्णवल्लभ पालीवाल	५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	कवि कस्तूरचन्द	३-००
जीवात्मा	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	७५-००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१०-००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	३-००
जीवन गीत	धर्मजित् जिज्ञासु	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	महर्षि दयानन्द	३-००
व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	पं० सत्यपाल विद्यालंकार	१५-००

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

१.	न्यायदर्शन भाष्य	१५०-००
२.	वैशेषिकदर्शन भाष्य	१२५-००
३.	सांख्यदर्शन भाष्य	१००-००
४.	योगदर्शन भाष्य	१२५-००
५.	वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
६.	मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०-००
७.	सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०-००
८.	सांख्य सिद्धान्त	२००-००
९.	वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००-००
१०.	प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००-००
११.	वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०-००

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	०-७५	Vedic Prayer	3-00

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	६-००	घर का वैद्य—हल्दी	६-००
घर का वैद्य—लहसुन	६-००	घर का वैद्य—बरगद	६-००
घर का वैद्य—गन्ना	६-००	घर का वैद्य—दूध-घी	६-००
घर का वैद्य—नीम	६-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	६-००
घर का वैद्य—सिरस	६-००	घर का वैद्य—हींग	६-००
घर का वैद्य—तुलसी	६-००	घर का वैद्य—नमक	६-००
घर का वैद्य—आँवला	६-००	घर का वैद्य—बेल	६-००
घर का वैद्य—नींबू	६-००	घर का वैद्य—शहद	६-००
घर का वैद्य—पीपल	६-००	घर का वैद्य—फिटकरी	६-००
घर का वैद्य—आक	६-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	६-००
घर का वैद्य—गाजर	६-००	घर का वैद्य—अनाज	६-००
घर का वैद्य—मूली	६-००	घर का वैद्य—फल-फूल	६-००
घर का वैद्य—अदरक	६-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी पच्चीस पुस्तकें पाँच आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी (सजिल्द)	४०-००

शीघ्र प्रकाश्य

'आर्य सूक्ति-सुधा'

आर्य सामाजिक साहित्य के इतिहास में प्रथम बार ही आर्यसमाज के इतने विद्वानों, महात्माओं व संन्यासियों की सूक्तियों को संग्रहीत करके छापा जा रहा है। सभी मुख्य-मुख्य वैदिक सिद्धान्तों पर महर्षि दयानन्द व आर्य विचारकों के उद्धरण संग्रहीत करके प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने गागर में सागर को बन्द कर दिया है। वैदिक धर्मियों के लिए यह पुस्तक एक ज्ञानकोश है।

इसे आप आबालवृद्ध को भेंट करके वैदिक धर्म के प्रचार का पुण्य लूटें। पुस्तक की कथा भी आर्य मन्दिरों में करिए। यह पुस्तक सम्पादक व संकलनकर्ता के ५० वर्ष के गहन व विस्तृत अध्ययन का निचोड़ है। आर्यसमाज के हिन्दी, उर्दू, फारसी व अंग्रेजी साहित्य की सहस्रों पुस्तकों का इसमें सार भर दिया है। अनेक पुराने पत्र-पत्रिकाओं का लाभ उठाकर इसको तैयार किया गया है।

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२००
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	८००
मातृ गौरव	*नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	८००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	३.५०
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	२५००

विवाह और विवाहित जीवन

लेखक : पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय। प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द मूल्य : १८ रुपये। पृष्ठ संख्या : १८४।

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने सन् १९४२ में Marriage And Married Life नाम की एक अत्युत्तम पुस्तक लिखी थी। यह पुस्तक उपाध्याय जी की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक है। स्वर्गीय विजयकुमार जी की प्रबल प्रेरणा से स्वर्गीय श्री रघुनाथ जी पाठक ने इसका हिन्दी अनुवाद किया। 'विवाह और विवाहित जीवन' के नाम से प्रकाशित इस हिन्दी संस्करण का भी खूब स्वागत हुआ। इसकी भाषा बड़ी मृदुल, स्वाभाविक, संतुलित, रोचक, संयत व साहित्यिक है।

इस पुस्तक के प्रचार की जितनी आज आवश्यकता है, इतनी पहले कभी नहीं थी।

विद्वान् लेखक ने विवाह और विवाहित जीवन के प्रत्येक पहलू पर देश-विदेश के मूर्धन्य विद्वानों, वैज्ञानिकों, डॉक्टरों, सुधारकों और विचारकों के प्रमाण दे-देकर, गृहस्थों को कर्त्तव्यबोध करवाया है। यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे पश्चिम का अंध अनुकरण करनेवाले प्रत्येक युवक को भेंट करने से लाभ ही होगा। यह पुस्तक मनुष्य मात्र के लिए पठनीय है।

विद्वान् लेखक ने विषयों का चयन बड़ी सूझ-बूझ से किया है—विवाह का महत्त्व, विवाह का उद्देश्य, प्रेम और प्रजोत्पत्ति, ब्रह्मचर्य, विवाह विषयक वैदिक संस्कार, दरार और मरम्मत, सामाजिक बंधन—ये अध्याय अत्यन्त मौलिक व प्रेरणाओं से परिपूर्ण हैं। धरती का बड़े से बड़ा नास्तिक व भोगवादी युवक पृष्ठ १११-११२ पर मधुपर्क विषयक तीन वेद मन्त्रों की तार्किक, साहित्यिक व काव्यमयी व्याख्या पढ़कर झूम उठेगा।

अपने आपको ऋषि-सन्तान या रामकृष्ण का वंशज माननेवाले प्रत्येक व्यक्ति से हमारा अनुरोध है कि वह सब प्रकार से पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इस उत्तम पुस्तक को स्वयं पढ़ें, नव दम्पतियों को उपहार में देवें। भारतीय पारिवारिक आदर्शों का गौरव व विशेषता दर्शानेवाली ऐसी दूसरी पुस्तक और कोई नहीं है। गृहस्थ में प्रवेश करनेवालों के लिए तो यह लाभप्रद है ही, जो पुराने गृहस्थी हैं, उनको भी इसका बार-बार अध्ययन करते रहना चाहिए।

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

दयानन्द जीवन चरित लेखक : देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

यह अनूठा जीवन चरित है। लेखक ने १५ वर्ष तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके जहाँ-जहाँ ऋषि गये थे, वहाँ जाकर, जिन-जिन लोगों से मुनि मिले थे, उन-उनसे मिलकर उनके जीवन की सामग्री एवं घटनाओं का संकलन किया था। इस प्रकार यह प्रामाणिक और खोजपूर्ण संस्करण है। इसके अनुवादक हैं पं० घासीराम।

२०×३०/८ आकार (कल्याण) में ६९० पृष्ठों का है। कम्प्यूटर से कम्पोज होकर उत्तम कागज पर छपा, सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द में उपलब्ध।

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न,

रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—**स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झांकी देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं,

☐ यदि आप प्राचीन राज्य-व्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं।

☐ यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,

☐ यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६०० श्लोकों में समाप्त।

मूल्य १७५-००

षड्दर्शनम्

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएं क्या हैं तो इस 'षड्दर्शनम् को पढ़ जाइए। संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन, अनुवाद सहित एक जिल्द में छपे हैं। उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका।

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अध्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

मूल्य १५०-००

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

हमारा १९९५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेद-प्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित संख्या में ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे। यह मार्च ९५ में पाठकों को मिलेगा।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाजें आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

शास्त्रार्थ विशेषांक

नीति-वाक्य

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

भावार्थ—'जिस मनुष्य को क्रोध और प्रसन्नता, अभिमान और लज्जा, धृष्टता तथा मनमानी की प्रवृत्ति—ये दोष जीवनोद्देश्य से परे नहीं खींच ले-जाते, वह पण्डित कहाता है।

'He, whom neither anger nor joy, neither pride nor false modesty, neither insolence nor vanity can distract from the high goals of life, is considered a wise person.

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य, जानन्ति स वै पण्डित उच्यते॥

भावार्थ—'जिस व्यक्ति के भावी कार्यक्रम को और गुप्तरूप से विचारी हुई मन्त्रणा को शत्रु लोग नहीं जान पाते, उसके किये हुए कार्य को ही जानते हैं, वही पण्डित कहाता है।

'He, whose intended acts and proposed counsels remain concealed from foes, whose acts become known only after they have been performed, is really a wise man.

(१-१८, १९)

(स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा अनूदित 'विदुरनीतिः' से)

महाभारत के दो अद्भुत प्रसंग

महाभारत निजी स्वार्थों और भाई-भाई के संघर्ष की गाथा मालूम पड़ती है, परन्तु वहाँ पर भी मानवता के वास्तविक कल्याण—जैसे सौतेले भाई में सच्चे भाई और हत्यारे गुरुपुत्र को भी क्षमा देने के दो बड़े अद्भुत मानवता-भरे अनुकरणीय प्रसंग हैं—जिनसे सब प्राणियों में अपनी जैसी प्रतीति हो, दूसरों के दुःखों को समझो और प्राणीमात्र का, मानवता का कल्याण हमें अभीष्ट होना चाहिए। आइए इन दो उदात्त मानवता-भरे प्रसंगों की झाँकी लीजिए।

महाभारत की घटना है, जुए में हारने के बाद पाँचों पाण्डव भाई वन-वन में भ्रमण करते घूम रहे थे। अचानक एक दिन यक्ष के एक जलाशय का पानी लेने के प्रयत्न में सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम निष्प्राण हो जाते हैं। अन्त में कुन्तीपुत्र ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आते हैं। वह भी अपने चारों भाइयों की तरह पानी पीना चाहते हैं, जलाशय का स्वामी यक्ष कहता है—"पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।" उन्होंने हरेक प्रश्न का समुचित उत्तर दे दिया, इस पर यक्ष ने कहा—"तुमने मेरे सभी प्रश्नों का ठीक उत्तर दिया, ठीक-ठीक व्याख्या कर दी, अतः तुम अपने चारों भाइयों में से जिस एक को चाहो, वही जीवित हो सकता है, बताओ किसे जीवित करूँ, इस महाबली भीम को या तुम सबके सहारे धुरन्धर अर्जुन को!" युधिष्ठिर ने अपने सहोदर भाइयों में से किसी को नहीं, प्रत्युत विमाता माद्री के पुत्र नकुल को पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की। यक्ष ने कहा, "अपने दोनों सगे वीर भाइयों को छोड़कर विमाता माद्री के पुत्र को क्यों जीवित करना चाहते हो?" उस समय युधिष्ठिर ने जवाब दिया था, "यदि मेरे एक भाई को ही जीवित रहना हो तो मेरी माता माद्री का भी एक पुत्र जीवित रहना चाहिए, क्योंकि माता कुन्ती का एक पुत्र मैं तो जीवित हूँ। यक्ष! मेरे पिता की दो भार्याएँ थीं, वे दोनों पुत्रवती रहें, यही मेरी धारणा है, मैं दोनों माताओं के प्रति समभाव रखना चाहता हूँ, अतः नकुल जीवित रहे।

भाई भाई से संघर्ष का कटुता से भरे महाभारत की लम्बी कहानी में दूसरा प्रसंग भी बड़ा मार्मिक है। महाभारत के अठारह दिनों से भरे बदले और संघर्ष से पूर्ण विवरणों की सबसे दुःखद परिणति तब हुई जब इस युद्ध के बाद सोते हुए पाण्डवों के सैनिक शिविर में घुसकर द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने रात्रि में धृष्टद्युम्न आदि समस्त पांचाल वीरों का संहार कर दिया था। धृष्टद्युम्न के वध का वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिर विलाप कर उठे थे, मृत पुत्रों को देखकर द्रौपदी व्याकुल हो उठी थी। अश्वत्थामा से मणि छीनकर अर्जुन ने द्रौपदी को शान्त करने की कोशिश की थी। उस समय द्रौपदी ने कहा—"गुरुपुत्र तो मेरे लिए भी गुरु के समान ही है। मैं तो केवल पुत्रों के वध का प्रतिशोध चाहती थी, वह पा गई। इसकी जननी गुरु द्रोण की पत्नी गुरुपत्नी मेरी तरह रोएगी, मैं नहीं चाहती जो दुःख मुझे मिला वह गुरुपत्नी को मिले। यह दिव्यमणि मस्तक पर धारण करो, यही मेरा प्रतिशोध है।"

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४३, अंक ९] वार्षिक मूल्य : बीस रुपये [अप्रैल १९९४

सम्पा० : अजयकुमार आ० सम्पा० : स्वामीजगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

शास्त्रार्थों के रोचक संस्मरण

—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का आरम्भ का युग शास्त्रार्थों का युग रहा है। एक समय था जब प्रत्येक आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर शास्त्रार्थ अवश्य होता था। पौराणिक जैनी, ईसाई, मुसलमान—सभी के साथ शास्त्रार्थ होते थे। इन शास्त्रार्थों में कभी-कभी बड़ी मनोरञ्जक घटनाएँ भी घटित होती थीं, हम ऐसे ही कुछ रोचक संस्मरण यहाँ लिख रहे हैं। सर्वप्रथम हम आर्यसमाज के संस्थापक, शास्त्रार्थकेसरी महर्षि दयानन्द के संस्मरण से ही आरम्भ कर रहे हैं।

पौराणिक जगत् में काशी का विशेष महत्त्व है। वह संस्कृतविद्या की खानि है। एक-एक विषय के सहस्रों आचार्य और अनेक विषयों के अनेक आचार्य उसकी गौरव-गरिमा को बढ़ाते हैं। लोगों की ऐसी भी मिथ्या धारणाएँ हैं कि वह शिवजी के त्रिशूल पर टिकी है और यहाँ मरने से मुक्ति हो जाती है। लंगोट बन्द एकाकी दयानन्द ने आज उसी काशी पर आक्रमण किया। कैसा अपूर्व साहस, कैसा अद्भुत ओज, तेज, पराक्रम और शौर्य है, कैसा अनुपम धैर्य है।

काशी में पहुँचकर महर्षि दयानन्द ने शास्त्रार्थ का विज्ञापन दे दिया और पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया। पण्डितों की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वे सोच भी नहीं सकते थे कि कोई व्यक्ति काशी में मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध आवाज उठा सकता है। काशी के पण्डितों में तहलका मच गया। अपनी जान बचाने के लिए उन्हें शास्त्रार्थ में आना पड़ा। एक ओर काशी

के विशुद्धानन्द, बालशास्त्री, ताराचरण, अम्बिकादत्त व्यास आदि सत्ताईस विद्वान् और दूसरी और एकाकी निर्भय दयानन्द।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पहले पं० ताराचरण से विचार हुआ, फिर स्वामी विशुद्धानन्द ने पूछा—'**रचनानुपपत्तेश्च०**' इत्यादि सूत्र का वेदों में क्या मूल है। महर्षि ने कहा—यह आज का प्रकरण नहीं है। विशुद्धानन्द बोले—यदि आप जानते हैं तो कहिए। स्वामीजी ने सरल-स्वभाव से कहा कि यह तो स॰ूर्ण वेदों को देखकर ही कहा जा सकता है। इसपर विशुद्धानन्द बोले—जब आपको वेद कण्ठस्थ नहीं है, तो आप काशी नगरी में क्यों आये? स्वामीजी बोले—क्या आपको सब-कुछ कण्ठस्थ है? विशुद्धानन्द ने कहा—हाँ, हमें सब-कुछ कण्ठस्थ है। स्वामीजी बोले—अच्छा आप धर्म के लक्षण कहिए। सब-कुछ कण्ठस्थ कहनेवाले धर्म के लक्षण नहीं बता सके और शास्त्रार्थ-स्मर में चारों खाने चित्त हो गये।

अब बालशास्त्री आगे आये। वे बोले धर्मशास्त्र के विषय में मुझसे पूछिए, हमें सब-कुछ कण्ठस्थ है। स्वामीजी बोले—आप अधर्म के लक्षण बता दीजिए। बालशास्त्री ने सोचा भी न होगा कि कोई ऐसा प्रश्न भी पूछ सकता है, उनके पैरों तले की मिट्टी खिसक गई और उनकी भी बोलती बन्द हो गई।

विजयश्री महाराज को मिली। महर्षि की कीर्त्ति का डंका बज गया।

यह तो शास्त्रार्थ की झलकी हुई। महर्षि के जीवन में वार्त्तालाप आदि के प्रसङ्गों पर भी अनेक रोचक कथानक मिलते हैं। हम तीन-चार घटनाएँ यहाँ दे रहे हैं—

बात सम्भवतः लाहौर (अब पाकिस्तान में) की है। महाराज अपने उपदेशामृत से ल़ोगों को तृप्त कर रहे थे और शंका-समाधान के द्वारा लोगों के भ्रम-जाल, मिथ्या विश्वास और अविद्यान्धकार को दूर कर उनके हृदयों को वैदिक ज्ञानज्योति से आपूर रह रहे थे।

एक दिन एक सज्जन उनके पास आकर एक दवात दिखाकर पूछने लगा—"क्या इस दवात में भी ईश्वर है?" स्वामीजी ने कहा—"हाँ, है।" फिर पूछा—"क्या पत्थर में भी भगवान् है?" स्वामीजी बोले—"हाँ, उसमें भी है। वह सर्वव्यापक है, अतः संसार के कण-कण में ओत-प्रोत है।" तब वह व्यक्ति बोला—"जब परमात्मा पत्थर में भी है, तब यदि माखनचोर की मूर्त्ति को पूजें और उसे मत्था टेकें तो क्या हानि हुई? ईश्वर

तो उसमें भी है।'' स्वामीजी ने कहा—''तुम घड़ियाल में भी ईश्वर को मानते हो या नहीं?'' वह बोला—''मानता हूँ।'' तब स्वामीजी ने कहा—''अरे! छटाँकभर के माखनचोर के आगे तो मत्था रगड़ते हो, परन्तु पाँच सेर के घड़ियाल को कूटते-पीटते हो। यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है?'' उस व्यक्ति से कुछ कहते हुए नहीं बना, लज्जा से अपना सिर झुकाया और चला गया।

महर्षि दयानन्द काशी के बाजार में से निकल रहे थे। एक दुकान पर शिवराजविजय के लेखक और काशी शास्त्रार्थ के सत्ताईस पण्डितों में से एक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने दुकानदार से पूछा—'**गुडस्य को भावः**'—गुड़ का भाव क्या है? महर्षि ने उत्तर दिया—'**गुडत्वम्**'—मीठापन। इस उत्तर को सुनकर पं० अम्बिकादत्त ने पीछे मुड़कर देखा तो दयानन्द मुस्करा रहे थे। उन्होंने सोचा शास्त्रार्थ-समर में बाजी मारनेवाला यहाँ भी बाजी मार गया।

एक बार किसी व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा—''आप व्याख्यान में तो ब्रह्मचर्य के गीत गाते हैं। अपने-आपको आजीवन ब्रह्मचारी बताते हैं, परन्तु आपने विवाह किया हुआ है और स्त्री रखते हैं।'' स्वामीजी ने किञ्चित् स्मित से कहा—''मैं बालब्रह्मचारी हूँ, मैंने विवाह नहीं किया, ब्रह्मचर्य से ही संन्यास ले-लिया, परन्तु पत्नी मेरी एक नहीं दो हैं। मेरी एक पत्नी 'दया' है और दूसरी 'सरस्वती' है, उन दोनों के मध्य में मैं 'आनन्द' हूँ।'' [दया+आनन्द+सरस्वती=दयानन्द सरस्वती। संस्कृत भाषा में दया और सरस्वती स्त्रीलिंगी शब्द हैं और आनन्द पुल्लिंग है]

एक दिन महर्षि दयानन्द थाली में भोजन कर रहे थे। इतनी ही देर में एक सिर मुँडे संन्यासी उधर आ निकले। स्वामीजी को थाली में भोजन करते देखकर बोले—''आप संन्यासी होकर धातु का स्पर्श करते हैं। संन्यासी के लिए धातु का स्पर्श वर्जित है।'' स्वामीजी भोजन कर चुके तो उस संन्यासी के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—''आपने अपना सिर तो चप्पल से मुँडवाया होगा, क्योंकि संन्यासी के लिए धातु (उस्तरा) छूना तो वर्जित है।'' संन्यासीजी की बोलती बन्द हो गई। मुँह से कोई शब्द नहीं निकला और चुपचाप वहाँ से चले गये।

श्री प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक थे। वे जहाँ सिद्धहस्थ लेखक थे वहाँ तार्किक भी अद्भुत थे। जहाँ कहीं वे ईसाइयों को प्रचार करते देखते वहीं उनसे भिड़ जाते थे और उन्हें वहाँ से खदेड़कर

ही दम लेते थे।

एक दिन उन्होंने देखा कि एक ईसाई हिन्दूधर्म पर आक्षेप करके लोगों को बहका रहा है। मिश्रजी भी डट गये और लगे उससे लोहा लेने। ईसाई पादरी से उनके तर्कों का उत्तर तो बना नहीं, अतः उन्होंने पैंतरा बदलकर पूछा—

"आप गाय को अपनी माता मानते हैं?"

"इसमें क्या सन्देह है—'**गावो विश्वस्य मातरः**'—गाय तो सारे संसार की माता है।" मिश्रजी ने उत्तर दिया।

"तब बैल आपका पिता हुआ।" पादरी ने पूछा।

मिश्रजी बोले—"हाँ, सम्बन्ध से तो इन्कार नहीं किया जा सकता।"

"कल हमने एक बैल को टट्टी खाते देखा था।" पादरी बोला।

"वह ईसाई हो गया होगा।" मिश्रजी ने उत्तर दिया।

पादरी को मौन धारण करने के सिवाय और कोई चारा नहीं था।

कौल (जिला करनाल) में आर्यसमाज की स्थापना हुई। पं० मधवाचार्य को यह सहन नहीं हुआ कि उनके गाँव में आर्यसमाज की स्थापना हो। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर शास्त्रार्थ का प्रसङ्ग चला। आर्यसमाज ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। नियम निर्धारण का समय आया तो श्री माधावाचार्यजी बोले—प्रत्येक वक्ता को बीस-बीस मिनट बोलने का समय रहेगा। यह नियम उचित नहीं था, क्योंकि बीस मिनट में प्रश्नकर्त्ता तो बीस प्रश्न ठोक सकता है, परन्तु उत्तर देनेवाला बीस मिनट में सब प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता। आर्यजगत् की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता पं० बुद्धदेवजी 'मीरपुरी' थे। उन्होंने पं० माधवाचार्य के सभी नियमों को स्वीकार कर लिया।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पं० माधवाचार्यजी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। "आर्यसमाजी तो केवल चारों वेदों को प्रमाण मानते हैं, परन्तु वे यज्ञोपवीत धारण करते हुए जिस मन्त्र का उच्चारण करते हैं—'**यज्ञोपवीतं परमं०......**' यह कौन-से वेद में है? तुम्हारी सन्ध्या का 'ओं वाक् वाक्' कौन-से वेद में है? 'ओम् नाभिः' यह इन्द्रिय-स्पर्श का मन्त्र है। क्योंजी यह नाभि कौन-सी इन्द्रिय है? माता बच्चे को छह दिन दूध पिलाये, पश्चात् धायी पिलाया करे—यह कौन-से वेद में लिखा है? स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि यदि ऊष्ण देश हो तो चोटीसहित सारे बाल कटवा दे। चोटी

कटवाना वेद में कहाँ लिखा है?'' इत्यादि।

इधर पं० बुद्धदेवजी प्रश्नों को सुन रहे थे और सोच रहे थे कि ग्रामीण जनता में इन प्रश्नों का समाधान कैसे किया जाएगा। उधर श्री माधवाचार्यजी अबाध गति से बोले जा रहे थे और बोलते हुए उन्होंने कहा—ओ राजपूतो ! दयानन्द ने तुम्हारे साथ तो बड़ा अन्याय किया है। देखो ! पति मरा पड़ा है। अनेक लोग वहाँ उपस्थित हैं। उनकी उपस्थिति में उसकी पत्नी से कहा जा रहा है कि ''तू इस मरे हुए पति की लाश को छोड़कर [अंगुली से निर्देश करते हुए] इन खड़े हुए लोगों में से किसी एक को चुन ले।''

इस प्रश्न को सुनते ही पण्डितजी की बाछें खिल गई। उन्होंने सोचा अब मैदान मार लिया। उन दिनों उपदेशक हिन्दी और उर्दू के सत्यार्थप्रकाश अपने साथ रखते थे। पण्डित बुद्धदेवजी ने खड़े होते ही कहा कि ''सत्यार्थप्रकाश में लाश शब्द नहीं है। माधवाचार्यजी ने कहा—वहाँ लाश शब्द है। जब पं० माधवाचार्यजी ने दो-तीन बार अपनी बात को दोहरा दिया तब मीरपुरीजी ने सत्यार्थप्रकाश निकाला और पौराणिक पक्ष के एक युवक को बुलाकर कहा कि पढ़ो, यहाँ क्या लिखा है। उसने पढ़ा—''इस पति की आशा को छोड़कर''। बुद्धदेवजी ने तुरन्त ही अपना सद्योनिर्मित दोहा बोला—

आशा को लाशा पढ़ें यही पोप की चाल।
बुद्धि इनकी मारी गई खा मुर्दों का माल॥

पं० बुद्धदेवजी को आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रही। विजयश्री ने पण्डितजी के चरण चूमे।

उत्तरप्रदेश में आर्यसमाज और सनातनधर्म के मध्य में शास्त्रार्थ हो रहा था। आर्यसमाज की ओर से वक्ता थे स्वामी अनुभवानन्दजी महाराज और अध्यक्ष थे शास्त्रार्थ महारथी पं० मुरारी लालजी। पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता थे पं० अखिलानन्दजी 'कविरत्न'।

पं० अखिलानन्दजी ने पूछा—स्वामी दयानन्दजी ने अपने वेदभाष्य में उल्लू और कबूतर पालने के लिए लिखा है। आर्यसमाज ने कितने उल्लू और कबूतर पाले हैं और उनसे क्या लाभ हुआ। पता नहीं स्वामी अनुभवानन्दजी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते, पं० मुरारीलालजी बोले—स्वामीजी ! ठहरिए, इस प्रश्न का उत्तर मैं देता हूँ। स्वामीजी से ऐसा कहकर

वे पं० अखिलानन्दजी को सम्बोधित करते बोले—आर्यसमाज ने दो उल्लू पाले थे [उनका तात्पर्य पं० भीमसेनजी शास्त्री और पं० अखिलानन्द से था। ये दोनों आर्यसमाजी थे। इन्हें वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने के कारण आर्यसमाज से निकाल दिया था] वे दोनों तो उड़ गये। उनसे आर्यसमाज को कोई लाभ नहीं हुआ। अब कबूतर पालकर देखेंगे। उनके पालने से जो लाभ या हानि होगी वह समय आने पर बतला दी जाएगी।

पं० मुरारीलालजी का उत्तर सुनते ही सारा पण्डाल ठहाकों से गूँज उठा। कविरत्नजी को आगे बोलने का साहस नहीं हुआ।

आर्यसमाज का प्रारम्भिक युग ऐसा था कि आर्यसमाज का छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी बड़े-से-बड़े सनातनी पण्डितों, मौलवियों और पादरियों को ललकार बैठता था। छोटी-छोटी बात पर शास्त्रार्थ की ठन जाती थी। ऐसे एक शास्त्रार्थ का उल्लेख पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ, आचार्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, ने किया है—

हिसार के किसी ग्राम में सनातनी पण्डित देवदत्त शर्मा ने अहीरों को शूद्र बतला दिया। बस अहीर तुरन्त पं० नरदेवजी के पास पहुँचे और बोले चलिए शास्त्रार्थ में।

पं० नरदेवजी—किस विषय का शास्त्रार्थ?

अहीर—आपको हमें क्षत्रिय सिद्ध करना होगा।

पं० नरदेवजी—हमें स्वयं पता नहीं, तुम कौन हो? हम वहाँ जाकर क्या सिद्ध करेंगे?

अहीर—चलिए तो सही।

पण्डितजी चल दिये। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। शास्त्रार्थ के मध्य में पं० देवदत्त शर्मा ने महर्षि दयानन्द के प्रति कोई कटु शब्द कह दिया। पं० नरदेवजी बोले—"सभ्यतापूर्वक शास्त्रार्थ कीजिए"।

देवदत्त शर्मा—स्वामीजी ने ऊँटों को 'उभयादतः'—दोनों ओर दाँतवालों में गिना है। यह बात मिथ्या है। ऊँट के दोनों ओर दाँत नहीं होते।

पण्डितजी ने ऊँट तो देखा था, परन्तु उन्हें स्वयं पता नहीं था कि ऊँट के दोनों ओर दाँत होते हैं या नहीं, फिर भी उन्होंने कहा—अवश्य होते हैं।

देवदत्त शर्मा—नहीं होते।

सभा में बड़ा कोलाहल मचा। सभा में ऊँट लाया गया। उसका मुँह खोला गया। सब अहीरों ने एक स्वर से कहा—इसके दोनों ओर दाँत हैं।

शर्माजी कहते ही रह गये कि एक ओर दाँत हैं, दूसरी ओर दो कीलें। अहीरों ने उत्तर दिया कि कीलें भी तो दाँत ही हैं। देवदत्त शर्मा देखते-के-देखते रह गये।

सर्वत्र पं० नरदेवजी शास्त्री की विजयदुन्दुभि बज गई, क्योंकि सभा में ऊँट लाने और उसके मुँह को खोलने का शास्त्रार्थ शायद भारतवर्ष में यह पहला ही था।

इसी प्रसङ्ग के साथ शास्त्रार्थ में बकरा लाने की बात भी सुन लीजिए। यह शास्त्रार्थ पानीपत में आर्यसमाजी और जैनियों के मध्य में हुआ था। आर्यजगत् की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता पं० रामचन्द्रजी देहलवी थे और जैनियों की ओर से स्वामी कर्मानन्दजी। [स्वामी कर्मानन्दजी अग्रवाल थे। स्वामी दर्शनानन्दजी के शास्त्रार्थों को सुनकर और उनके जीवन से प्रेरणा लेकर ये आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये। जैनियों के ग्रन्थों का मन्थन करके ये शास्त्रार्थ-महारथी बन गये। जैनियों से अनेक शास्त्रार्थ किये। ये लङ्गोट के पक्के नहीं थे। जब आर्यसमाज के अधिकारियों को पता लगा तो इनसे कहा गया कि अपना चरित्र सुधारो, प्रतिज्ञा करो कि भविष्य में ऐसा दुष्कर्म नहीं करोगे। अन्यथा आपको आर्यसमाज से निष्कासित कर दिया जाएगा। वे बोले—'मेरा विरोध बहुत मँहगा पड़ेगा'। आर्यसमाज के अधिकारियों ने कहा—'कोई चिन्ता नहीं है'। ये जान-बूझकर जैनियों से शास्त्रार्थ में हार गये और फिर जैनियों की ओर से आर्यसमाज से शास्त्रार्थ करने लगे।]

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पं० रामचन्द्रजी देहलवी ने जैनियों के शास्त्रों की असंगत, परस्पर विरुद्ध बातों और गप्पों का वर्णन आरम्भ किया। कर्मानन्द से उनका तो उत्तर नहीं बना उन्होंने महर्षि दयानन्द पर आक्षेप करते हुए पूछा—"स्वामी दयानन्द ने बकरे का दूध लिखा है, क्या यह गप्प नहीं है?" देहलवीजी ने कहा—"स्वामीजी गुजराती थे। गुजराती में बकरी को बोकरा कहते हैं, तात्पर्य बकरा से नहीं बकरी से है"। देहलवीजी ने और भी कहा—बकरे का अर्थ बकरा जाति है। जैसे गौ का अर्थ गौ जाति होता है, जिसमें गाय और बैल दोनों का ग्रहण होता है। छाग से आशय छाग जाति है—इसका अर्थ है बकरा, बकरी। इन समाधानों के बाद भी कर्मानन्दजी अपनी बात पर अड़े रहे। वे बकरे के दूध की ही रट लगाते रहे। एक व्यक्ति ने देहलवीजी को दूध देनेवाले बकरे की बात बताई। आर्यसमाज की ओर से सायंकाल सभास्थल पर दूध देनेवाला बकरा दिखाने की घोषणा कर दी। जनपद करनाल के एक गाँव से बीस रुपया

देकर सायंकाल पण्डाल में बकरा लाया गया। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि बकरे के थनों में दूध था। इस घटना से जैनियों की भारी पराजय हुई और आर्यसमाज का सर्वत्र जय-जयकार हुआ। लोग स्थान-स्थान पर कहते सुने जाते थे कि आर्यसमाजी बड़े विचित्र होते हैं, इन्होंने बकरे का दूध भी सिद्ध कर दिया।

बकरा दूध नहीं देता। बकरी ही दूध देती है। महर्षि दयानन्द का तात्पर्य बकरी से ही है, परन्तु हठी और दुराग्रहियों को क्या कहा जाए। परमात्मा की सृष्टि बड़ी विचित्र है। इसमें बकरे का दूध मिलना भी सम्भव है। लीजिए पढ़िए—

नई दिल्ली, ६ नवम्बर। दो वैज्ञानिकों ने एक ऐसे बकरे का पता लगाया है जो २०० मिलीलीटर दूध प्रतिदिन देता है।

श्रीनगर [उत्तर प्रदेश] के गढ़वाल विश्वविद्यालय विभाग के डॉ० जे०पी० भट्ट और डॉ० जी०सी० मिश्र ने इस बकरे का पौड़ी के निकट एक गाँव में पता लगाया था। अब वे इस बकरे का विस्तृत रूप से अध्ययन करने की योजना बना रहे हैं।

उन्होंने साइंस रिपोर्ट में लिखा है कि इस बकरे के अण्डकोश और लिङ्ग दोनों ही हैं, परन्तु इसके साथ ही इसके थन भी हैं और उनसे २०० मिलीलीटर दूध निकलता है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार यह बकरा यौन-कर्त्तव्य भी सफलतापूर्वक करता है।

इस बकरे का दूध परीक्षण के लिए प्रयोगशाला में लाया गया है।

—दैनिक वीर अर्जुन, ७ नवम्बर १९७६

आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान्, गणित के जादूगर और महापण्डित श्री अयोध्याप्रसादजी वैदिक मिशनरी ने देश में ही नहीं विदेशों में भी वैदिक धर्म की दुन्दुभि बजाई। आप सूरिनाम [दक्षिण अमेरिका] में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे।

एक दिन एक अंग्रेज़ दम्पत्ती आपसे मिलने आये। पुरुष ने हस्तालिङ्गन [हाथ मिलाने, Shake Hand] करने के लिए हाथ बढ़ाया तो पण्डितजी ने भी हाथ बढ़ाकर उससे हाथ मिला लिया, परन्तु जब उनकी पत्नी ने भी हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया तो पण्डितजी ने अपना हाथ पीछे खींच लिया। इसपर अंग्रेज़ सज्जन ने पूछा—"आपने इनसे हाथ क्यों नहीं मिलाया"। पण्डितजी बोले—"बाईबिल में लिखा है कि छूने

से स्त्री गर्भवती हो जाती है''। ईसाई सज्जन मौनधारण करके रह गये।

बिहार में एक स्थान है राजधनवार। वहाँ भी आर्यसमाजी और सनातनधर्मियों में एक शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। आर्यजगत् की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता थे श्री अमरसिंहजी शास्त्रार्थमहारथी जो पीछे चलकर अमर स्वामीजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हें सहायता और सहयोग देने के लिए पं० अयोध्याप्रसादजी वैदिक मिशनरी, पं० रामानन्दजी शास्त्री, पं० गङ्गाधरजी शास्त्री, पं० वेदव्रतजी, जो आगे चलकर स्वामी अभेदानन्दजी के नाम से विख्यात हुए, मञ्च की शोभा बढ़ा रहे थे। पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थ करनेवाले थे पं० अखिलानन्दजी 'कविरत्न'। उनके सहयोगी थे श्रीकृष्णशास्त्री और पं० माधवाचार्य।

पं० अखिलानन्दजी बोलने के लिए खड़े हुए। बोलते-बोलते हाथ नचा-नचाकर और अपनी ओर संकेत करके कहने लगे—

इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से॥

मैं पहले आर्यसमाजी था, अब सनातनी हो गया और आर्यसमाजियों का डटकर खण्डन करता हूँ—

इस घर को आग लग गई घर के चिराग से॥

जब पण्डितजी अपनी बात कह चुके तब श्री अमरसिंह जी बोलने के लिए खड़े हुए। वे बोले—हमारे घर में मिट्टी के तेल की ढिबरी जलती थी। वह दुर्गन्ध देती थी, घर की दीवारों को भी काला करती थी, प्रकाश भी बहुत मन्द था। विद्युत् का युग आया। घरों में विद्युत् के बल्ब जलने लगे। अपने विद्वानों की संकेत करके बोले—हमारे यहाँ आर्यसमाज में तो आचार्य रामानन्दजी शास्त्री, पं० अयोध्याप्रसादजी, पं० वेदव्रतजी, पं० गङ्गाधरजी शास्त्री के रूप में ५००-५०० वाट के विद्युत् के बल्ब प्रकाश कर रहे हैं। हमने मिट्टी के तेल की ढिबरी को उठाकर चौराहे पर फेंक दिया। पौराणिक लोगों ने देखा। उन्होंने हम से पूछा—यह ढिबरी आपके काम की तो रही नहीं, आपकी आज्ञा हो तो हम उठाकर ले-जाएँ। हमने आज्ञा दे दी और सनातनी इस ढिबरी को उठाकर ले-गये। यह अब उनके घरों में दुर्गन्ध फैला रही है और उनके घरों की दीवारों को काला कर रही है।

उत्तर ऐसा सटीक था कि आर्य विद्वान् तो हँसी से मञ्च पर ही लोट-पोट हो रहे थे और पौराणिकों को कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। जनता ने करतल ध्वनि से आर्यसमाज का जयघोष किया।

आर्यजगत् में पण्डित मनसारामजी 'वैदिक तोप'भी अद्वितीय शास्त्रार्थमहारथी थे। उन्होनें अनेक शास्त्रार्थ किये और सभी में विपक्षियों को मुँह की खानी पड़ी। उनके शास्त्रार्थ का एक रोचक प्रसंग है—

पौराणिक पण्डित ने पूछा—"ऐसा धर्म कौन-सा है, जिसे आधी दुनिया मानती है और आधी दुनिया जिसका विरोध नहीं करती"। [प्रश्न पूछने के पीछे भावना यह थी कि ऐसा धर्म वैदिक तो हो नहीं सकता, पण्डितजी बौद्ध, ईसाई अथवा इस्लाम आदि में से किसी का नाम लेंगे, तब वे कह देंगे, फिर हम वैदिक धर्म को क्यों मानें।] पण्डितजी प्रश्नकर्त्ता की मनशा को तुरन्त ताड़ गये और तपाक से बोले—'ऐसा धर्म है मासिक धर्म'—आधी दुनिया इसे मानती है, और आधी दुनिया इसका विरोध नहीं करती। बिचारे पौराणिक पण्डित की ग्रीवा लज्जा से झुक गई। उन्हें कोई उत्तर नहीं सूझा।

एक अन्य प्रसङ्ग है। आर्यजगत् की ओर से पण्डितजी को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया गया। पौराणिक पण्डित को यह पता था कि मनसारामजी जन्म के ब्राह्मण नहीं हैं, वे वैश्य अग्रवाल हैं। वे बोले—"यहाँ लाला नहीं चाहिए, पण्डित चाहिए"। पं० मनसारामजी भी कहाँ चूकनेवाले थे, तुरन्त बोले—"आज तो लाला ही चाहिए। मैं तर्क-तुला पर तोलकर जनता को दिखाऊँगा कि पौराणिक पण्डित कितने पानी में है। उसे वेद-शास्त्र, व्याकरण और संस्कृत का कितना ज्ञान है"। पण्डितजी को मौन ही धारण करना पड़ा।

जाखल में एक शास्त्रार्थ हुआ। आर्यजगत् की ओर से बोलनेवाले थे प्रो० राजारामजी। सनातनधर्म की ओर से शास्त्रार्थ करनेवाले थे श्री कृष्णजीशास्त्री। पौराणिकों की ओर से सभा के अध्यक्ष थे श्री उदमीराम पटवारी। शास्त्रार्थ के नियम निश्चित किये जाने लगे। प्रोफेसर राजारामजी ने पूछा—"शास्त्रार्थ किस विषय पर होगा"। पौराणिक पण्डित बोले—"आर्यसमाज के नियमों पर होगा"। राजारामजी ने नम्रतापूर्वक कहा—"आर्यसमाज के नियम तो ऐसे हैं, जिन्हें सभी मानते हैं। शास्त्रार्थ तो ऐसे विषय पर हो सकता है जिसे हम मानते हों और सनातनी न मानते हो अथवा जिसे सनातनी मानते हों हम नहीं मानते हों। ऐसे विषय है—मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, मृतकश्राद्ध आदि"। पण्डितजी तैश में बोले—"हम आर्य-समाज के किसी नियम को नहीं मानते"। अब राजारामजी ने अध्यक्ष महोदय से पूछा—"क्या आप भी आर्यसमाज के किसी नियम को नहीं

मानते''? उन्होंने भी अपने पण्डित के समान उसी जोश में कह दिया— ''हाँ, हम आर्यसमाज के किसी नियम को नहीं मानते''। श्री राजारामजी बोले—''आप लिखकर दीजिए कि हम आर्यसमाज के किसी नियम को नहीं मानते''। श्री उदमीरामजी पटवारी ने लिख दिया। अब प्रो० राजारामजी ने अपनी मनमोहक और प्रभावोत्पादक शैली में जनता के समक्ष कहना आरम्भ किया—''आर्यसमाज का चौथा नियम है, ''सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए''। ये आर्यसमाज के किसी नियम को नहीं मानते, अतः इनका नियम हुआ कि 'असत्य के ग्रहण करने और सत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए'। आर्यसमाज का छठा नियम है—'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है'। ये हमारे किसी नियम को मानते नहीं, अतः सनातनधर्म का नियम हुआ—'संसार का अपकार करना सनातनधर्म का मुख्योद्देश्य है'। इस प्रकार एक-एक नियम को लेकर प्रो० राजारामजी ने पौराणिकों की धज्जियाँ उड़ाईं तो उन्हें छठी का दूध याद आ गया। इस शास्त्रार्थ में सनातनधर्म की घोर पराजय हुई और श्री उदमीरामजी पटवारी उसी दिन आर्यसमाज के सदस्य बन गये।

एक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ शामली जि० सहारनपुर में हुआ। पौराणिकों की ओर से बोलनेवाले थे पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदः। आर्यसमाज की ओर से बोलनेवाले थे पं० व्यासदेवजी शास्त्री एम०ए०, एल०एल०बी। शर्त्त यह रक्खी गई कि शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा। शास्त्रीजी को क्या आपत्ति हो सकती थी, शर्त्त स्वीकार हो गई।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जब पं० गिरधरशर्मा संस्कृत में अपनी वक्तृता दे चुके तब व्यासदेवजी खड़े हुए और बड़े मधुर स्वर में उन्होंने '**विश्वानि देव०**' आदि मन्त्रों का पाठ करना आरम्भ किया। दूसरी बार उन्होंने स्वस्तिवाचन आरम्भ कर दिया। जब दोनों पण्डित तीन-तीन बार बोल चुके तब कुछ जाट लोग हाथों में मोटे-मोटे लट्ठ लिये हुए खड़े हुए और बोले—''आप क्या बोल रहे हैं, हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। आप हिन्दी में बोलें, नहीं तो लट्ठ मारकर तुम्हारे सिर फोड़ दिये जाएँगे''। व्यासदेवजी बोले—''मैं हिन्दी में बोलने के लिए तैयार हूँ, उन पण्डितजी को कहो''। लट्ठ देखकर पण्डितजी भी हिन्दी में बोलने के लिए तैयार हो गये। अब हिन्दी भाषा में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। श्री गिरधरशर्मा ने पूछा— 'वेद में जाटों का यज्ञोपवीत कौन-से मन्त्र में लिखा है''?

व्यासदेवजी बोले—"मुझे मन्त्र याद नहीं आ रहा है, कापी में लिखा हुआ है, घर से लिखकर भेज दूँगा, आप तो चतुर्वेद: हैं, आपको तो सारे वेद कण्ठस्थ हैं। जिस मन्त्र में गौड़ ब्राह्मण का यज्ञोपवीत लिखा है, उससे अगले ही मन्त्र में जाटों का यज्ञोपवीत लिखा है। आपको तो चारों वेद कण्ठस्थ हैं, याद आ गया होगा। मैं घर से लिखकर भेज दूँगा। शर्माजी उभयपाश रज्जू में बँध गये, न 'हाँ' कह सकते हैं, न 'न' कह सकते हैं।

आर्यजगत् में पण्डित लोकनाथजी तर्कवाचस्पति की भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने भी जीवन में अनेक शास्त्रार्थ किये। एक शास्त्रार्थ में एक पौराणिक ने चुटकी ली—"पण्डितजी ! आज आप बातें बना रहे हैं, उन दिनों को याद करो जब आप काशी में मेरे साथ अध्ययन कर रहे थे। उन दिनों में आपने अपने एक साथी की रजाई चुराई थी, बोलो चुराई थी या नहीं"। पं० लोकनाथजी ने बड़े शान्त और गम्भीरभाव से उत्तर दिया—"मेरे पुराने साथी ने पुरानी बात याद करा दी। यह सत्य है कि ये पण्डितजी मेरे सहपाठी थे। यह भी सत्य है कि मैंने अपने एक साथी की रजाई चुराई थी, परन्तु मेरे मित्र ! आप अपने हृदय पर हाथ रखकर कहें कि तब मैं आर्यसमाजी तो नहीं था। वह चोरी तो मैंने सनातनधर्मी होते हुए ही की थी। आर्यसमाज पर उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है। आर्यसमाजी बनने के बाद कोई बुरा काम किया हो तो बताइए"। पण्डितजी पर घड़ों पानी पड़ गया।

आर्यजगत् में पण्डित गणपतिजी शर्मा भी लब्धप्रतिष्ठित विद्वान् और शास्त्रार्थमहारथी थे। आपने काश्मीर में पादरी जानसन को हराकर महाराज के हृदय में आर्यसमाज की धाक जमा दी थी। आपके व्याख्यान को सुनकर मुग़ला डाकू ने डाके डालना बन्द कर दिया। आपका एक शास्त्रार्थ झालावाड़ पाटन में हुआ था। स्वयं महाराज शास्त्रार्थ के अध्यक्ष थे। शास्त्रार्थ करनेवाले राजपण्डित वयोवृद्ध थे। अत: वे घण्टों बोल नहीं सकते थे। उन्होंने कुछ प्रश्न लिख दिये कि इन प्रश्नों का उत्तर गणपतिजी से पूछा जाए तो वे अवश्य पराजित हो जाएँगे। उन प्रश्नों को जिन भी पण्डितों ने देखा, उन्हें अमीमांस्य बताया। पण्डितगण अपनी विजय की सम्भावना से आश्वस्त थे।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। उन प्रश्नों को लेकर एक पौराणिक विद्वान् पण्डित गणपतिजी से लोहा लेने के लिए खड़ा हुआ। जिन प्रश्नों को पौराणिक लोग अमीमांस्य समझ रहे थे, पण्डितजी ने एक-दो बार में ही

उनकी धज्जियाँ उड़ा दीं। पौराण विद्वान् साहस छोड़कर बैठ गया। अब राजपण्डित खड़े हुए। एक-दो बार में ही पण्डितजी के मुँह में झाग आ गये। अपने पण्डित की दयनीय दशा देखकर महाराज ने शेष शास्त्रार्थ अगले दिन होने की घोषणा कर दी। राजपण्डित ने कुछ कहने के लिए पाँच मिनट का समय माँगा जो उन्हें मिल गया। पण्डितजी बोले—"भाइयो ! मैं हारा नहीं हूँ। वृद्धावस्था के कारण अधिक बोल नहीं सकता। आप कल अवश्य आइए, कल मैं पण्डितजी की प्रत्येक बात का खण्डन करूँगा।"

पण्डितजी अपनी वक्तृता दे चुके तो गणपतिजी ने भी दो मिनट का समय माँगा। उन्हें भी समय मिल गया। गणपतिजी बोले—"शास्त्रार्थ हार-जीत के लिए नहीं होता, शास्त्रार्थ तत्त्व और सत्य के निर्णय के लिए होता है। हाँ, एक बात पण्डितजी ने बड़ी विचित्र कह दी है कि 'कल वे मेरी प्रत्येक बात का खण्डन करेंगे। तो कल यदि मैं यह कहूँ कि पण्डितजी अपने बाप से पैदा हुए थे तो क्या इसका भी खण्डन करेंगे"। पण्डितजी का इतना कहना था कि सारा पण्डाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। अगले दिन शास्त्रार्थ तो क्या होना था, हार तो आज ही उनके गले में पड़ गई थी।

डलहौजी में मुसलमानों की ओर से एक सर्वधर्म सम्मेलन रक्खा गया। इसमें आर्यजगत् की ओर से वक्ता थे—पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं० ब्रह्मदत्तजी 'जिज्ञासु'। सनातनधर्म का प्रतिनिधित्व कर रहे थे पं० चिरञ्जीलाल शुक्ल। सभी वक्ताओं ने बड़ी योग्यता से अपना-अपना पक्ष रख दिया। सबसे अन्त में इस्लाम का पक्ष रक्खा गया। मौलवीजी ने कहा—"परमात्मा ने सबले पहले वेद दिये। वेदों में कुछ कमी रह गई, अतः फिर परमात्मा ने जन्दावस्था, फिर इञ्जिल और सबसे अन्त में कुरानशरीफ दिया। आज तक कुरान शरीफ का खण्डन नहीं हुआ है, अतः कुरान शरीफ ही परमात्मा का अन्तिम ज्ञान है। यदि इसपर किसी को कुछ कहना हो तो कह सकता है।"

श्री शुक्लजी खड़े हुए कि मैं कुछ कहना चाहता हूँ। उनसे आग्रह किया गया कि आपको जो कुछ कहना है, मञ्च पर आकर कहें। पण्डितजी मञ्च पर पहुँचकर बोले—"मौलवी साहब ! मैं तो केवल इतना कहने के लिए खड़ा हुआ हूँ कि आप अपने कथन में इतना और जोड़ लें कि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में कुरान की धज्जियाँ उड़ा रक्खी है, अतः आपकी कसौटी के अनुसार अन्तिम धर्मग्रन्थ तो 'सत्यार्थप्रकाश' ही है। अपनी बात कहकर जैसे ही शुक्लजी मञ्ज से नीचे उतरे, पण्डित

ब्रह्मदत्तजी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया।

भारत का विभाजन नहीं हुआ था। पञ्जाब में आर्यसमाज और इस्लाम के दिग्गजों में पुनर्जन्म पर शास्त्रार्थ हो रहा था। शास्त्रार्थ होते हुए कई दिन बीत गये, परन्तु निर्णय नहीं होने में आ रहा था। मौलवी साहब एक ही बात की रट लगाये हुए थे, यदि पुनर्जन्म होता है तो यह बताइए कि पिछले जन्म में तुम क्या थे? जब निर्णय होने में नहीं आया तो लखनऊ से पं० धर्मभिक्षु को बुलवाया गया।

पण्डितजी पहुँच गये। स्नान करने के लिए कुएँ पर गये हुए थे, वहीं बहुत-से आर्य भाईयों ने घेर लिया। शास्त्रार्थ का वर्णन सुनाने लगे। पण्डितजी बोले—"कोई बात नहीं, अब शीघ्र ही निर्णय हो जाएगा।"

यथासमय शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पण्डितजी बोलने के लिए खड़े हुए। मौलवी ने वही घिसा-पिटा प्रश्न दोहरा दिया—"पुनर्जन्म होता है, तो आप यह बताइए कि पिछले जन्म में आप क्या थे?" पण्डितजी बोले—"मौलाना ! यह कोई पूछने की बात नहीं है, आप युक्ति-प्रमाणों से बात करो। ऐसा प्रश्न पूछना व्यर्थ है।"

मौलाना तो अपनी बात पर अड़े हुए थे। बार-बार उसी प्रश्न को दोहरा रहे थे। पण्डितजी बोले—"मैं यह भी बता दूँगा, मैं पिछले जन्म में कौन था"।

"तो बताइए न", मौलाना ने पूछा।

पण्डितजी बोले—"अध्यक्ष महोदय ! तनिक सावधान होकर सुनना। मैं बता दूँगा कि मैं पिछले जन्म में कौन था और उसी के साथ शास्त्रार्थ का भी निर्णय हो जाएगा।"

मौलाना फिर तपाक से बोले—"हाँ बताइए न, आप पिछले जन्म में क्या थे ?"

"पिछले जन्म में मैं तुम्हारा बाप था", पण्डितजी ने उत्तर दिया।

इस उत्तर को सुनकर मौलाना क्रुद्ध होकर बोले—"तू मेरा बाप नहीं मेरी पत्नी थी।"

पण्डितजी बोले—"अध्यक्ष महोदय ! निर्णय हो गया। मैं इनकी पत्नी ही सही। पुनर्जन्म तो सिद्ध हो गया।"

लोग पण्डितजी की सूझ-बूझ की जी खोलकर प्रशंसा कर रहे थे।

महाराजा पटियाला की इच्छा थी कि सिक्खों और आर्यसमाजियों का

शास्त्रार्थ देखा जाए। उनकी इच्छानुसार शास्त्रार्थ का प्रबन्ध कर दिया गया। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। सिख शास्त्रार्थकर्त्ता ने दो-चार प्रश्न किये साथ ही यह भी कहा कि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में बाबा नानकदेवजी को गालियाँ दी हैं। आर्यविद्वान् ने आक्षेपों का उत्तर तो दे दिया, परन्तु स्वामीजी ने बाबा नानकजी को गालियाँ दी हैं, इस विषय में मौन रहे। सिक्ख महोदय ने सबसे पहले वही बात दोहराई—स्वामी दयानन्द ने बाबा नानक को गालियाँ दी हैं, इसका उत्तर नहीं दिया। आर्यविद्वान् और प्रश्नों का तो मुँहतोड़ उत्तर देता था, परन्तु इस विषय पर मौन हो जाता था, क्योंकि महाराजा साहब स्वयं सिक्ख मत के अनुयायी थे। जब सिक्ख शास्त्रार्थकर्त्ता ने तीसरी बार भी वही बात दोहराई कि स्वामीजी ने बाबाजी को गालियाँ दी हैं तब महाराज भी सब-कुछ समझ गये और बोले—बाबे ने बाबे को गाली दी, तुझे क्या ? तू शास्त्रार्थ कर। महाराजा के इस विनोद-वाक्य से सारा वातावरण हास्यरस में परिवर्तित हो गया।

कुछ यात्री रेल में यात्रा कर रहे थे। अधिकांश मुसलमान थे। एक पण्डितजी थे। एक आर्यविद्वान् भी सहयात्री थे। रेल किसी स्टेशन पर रुकी। लोग पानी पीने के लिए उतरे। पण्डितजी भी उतरे। भीड़ बहुत थी। पण्डितजी पानी नहीं ले-सके। दो-तीन स्टेशनों पर ऐसा ही हुआ। भोजन का समय हो गया। मुसलमानों ने अपनी रोटियाँ निकाल ली और पण्डितजी से भी भोजन करने के लिए कहा। पण्डितजी मुसलमानों का भोजन कैसे कर सकते थे? सङ्कोच से बोले—"आज एकादशी है, मेरा व्रत है।" एक मुसलमान ने पूछा—"एकादशी क्या होती है?" पण्डितजी कुछ बोलें उससे पूर्व ही एक मुसलमान बोल उठा—"यह रोजे की बीवी होती है।" मुस्लिम बन्धु खिलखिलाकर हँस पड़े। पण्डितजी खीसें निपोरकर रह गये। आर्यविद्वान् इसे सहन नहीं कर सके। एक कोने में से वे बोले—"मौलाना! यहीं कैसे रुक गये, आगे भी तो कहो।" मौलाना को भी अगली बात पता नहीं थी, वह बोला—"अगली बात आप कह दीजिए।" आर्यविद्वान् ने कहा—"यह एकादशी बीवी तो रोजे की ही है, परन्तु रखते इसे हिन्दू ही अपने घर में हैं।" सारे मुसलमानों की बोलती बन्द हो गई। किसी को आगे कहने के लिए कोई उत्तर नहीं सूझा।

इसके साथ ही एक भोज की बात भी सुन लीजिए। गृहमन्त्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने एक बार एक भोज दिया। सभी मिनिस्टर आमन्त्रित थे। श्री रफीअहमद किदवई भी आमन्त्रित थे। किन्हीं कारणों से उन्हें देर

हो गई। वे पहुँचते ही पन्तजी से बोले—"जूते ऊतारूँ क्या?" पन्तजी ने सहज मुस्कान से उत्तर दिया—"जूते नहीं उतारोगे तो खाओगे क्या?" सारे वातावरण में एक ठहाका गूँज उठा और किदवईजी भी उसी में खो गये।

श्री मेलारामजी बर्क निष्ठावान् आर्यसमाजी थे। पापिस्तान बनने से पूर्व डिंगा में रहते थे। वहाँ आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ ने भी अपने जीवन के अनेक वर्ष बिताये थे। जब स्वामीजी वहाँ होते थे तब तो किसी को शास्त्रार्थ करने का साहस होता न था। स्वामीजी के प्रचारार्थ इधर-उधर चले जाने पर कभी-कभी आर्यसमाज के साथ छेड़छाड़ हो जाती थी। पौराणिक आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज कर बैठते थे। एक विद्वान् ने शास्त्रार्थ का आह्वान किया। उस समय आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य स्वाध्याय करता था। नई-नई युक्तियाँ सोचता था। साधारण-से-साधारण व्यक्ति यहाँ तक कि आर्यसमाज का सेवक भी पौराणिकों के बड़े-बड़े विद्वानों से शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हो जाता था। श्री मेलारामजी बर्क ने जो उस समय एफ०ए० (बारहवीं क्लास) में थे चैलेंज स्वीकार कर लिया। जब बर्कजी ने शास्त्रार्थ का आह्वान स्वीकार कर लिया तो पण्डितजी ने एक और शर्त रख दी। शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा। बर्कजी ने यह बात भी स्वीकार कर ली, परन्तु एक बात अपनी ओर से भी जोड़ दी कि जो पहले हिन्दी में बोलेगा वह हारा हुआ माना जाएगा।

शास्त्रार्थ का चैलेंज तो स्वीकार कर लिया, परन्तु चिन्ता यह थी कि संस्कृत में शास्त्रार्थ कैसे किया जाएगा। अन्ततः मार्ग मिल गया। अभी शास्त्रार्थ में कई दिन थे। बर्कजी ने महर्षि दयानन्द प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में मूर्त्तिपूजा पर संस्कृत में जो तर्क और प्रमाण लिखे हुए थे, उन्हें कण्ठस्थ कर लिया।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पौराणिक पण्डित बोल चुके तो श्री मेलारामजी ने जो कण्ठस्थ किया हुआ था, वह बोल दिया। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी बोल दिया। जितना कण्ठस्थ किया था, वह सब तो बोल दिया। चौथी बार क्या बोलेंगे उसकी युक्ति भी सूझ गई। जब बर्कजी ने तीसरी बार पुनः आरम्भ से शुरु किया तो पण्डितजी समझ गये और वे बोल उठे—" आप रटी-रटाई संस्कृत बोल रहे हैं।" श्री मेलारामजी बोले—"आप हिन्दी में बोले हैं, अतः आप हार गये।" शर्त के अनुसार जनता ने भी बर्कजी के पक्ष में निर्णय दे दिया। पण्डितजी मुँह ताकते रह

गये।

आर्यजगत् के एक भजनोपदेशक दादा शिवरामजी का भी एक सस्मरण पढ़िए। पण्डितजी प्रचारार्थ एक बार अम्बाला गये। इन दिनों में रामलीलाएँ हो रही थीं। एक दिन पण्डितजी ने मन्त्रीजी से कहा—"सुना है, यहाँ की रामलीला बहुत बढ़िया होती है, एक दिन हमें भी दिखा दो।" मन्त्रीजी बोले—"दादाजी ! आपकी पगड़ी की अलग पहचान है। लोग पहचान लेंगे, ठीक नहीं रहेगा।" पण्डितजी ने पगड़ी उतारकर बगल में दबाई और बोले—"लो, अब तो कोई नहीं पहचानेगा।"

पण्डितजी और मन्त्रीजी दोनों रामलीला में पहुँच गये। उस दिन सीता तथा राम का विवाह-संस्कार दिखाया जा रहा था। कन्यादान का समय आया तो लोग कन्यादान करने लगे। दूसरी ओर कुछ स्वयंसेवक बाल्टियाँ लेकर जनता से दान देने का आग्रह करने लगे। ये स्वयंसेवक दान माँगते हुए वहाँ भी पहुँचे जहाँ दादा शिवराम और मन्त्रीजी बैठे थे। उनसे भी दान माँगा। उन्होंने कहा—"आगे चलो।" स्वयंसेवक बोले—"सब दे रहे हैं, आप भी दीजिए।" दादा शिवराम बोले—"वे तो घराती हैं, इसलिए दे रहे हैं, हम तो बराती हैं।" मन्त्रीजी बोले—"दादाजी ! अब जल्दी चलो, नहीं तो पहचान लिये जाएँगे।"

आर्यजगत् में पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी अद्भुत तार्किक थे। उन्होंने पौराणिक, ईसाई और मुसलमान—सभी के साथ शास्त्रार्थ किये और सभी को पछाड़ा। उनके शास्त्रार्थों की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत हैं—

देहलवीजी का सर्वप्रथम शास्त्रार्थ एक मौलाना के साथ हुआ। आर्य-समाज की ओर से शास्त्रार्थ के अध्यक्ष पण्डित मुरारीलालजी शास्त्रार्थमहारथी थे। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। देहलवीजी मौलाना से पूछ रहे थे कि कोई मूर्ख व्यक्ति भी बिना प्रयोजन के कोई काम नहीं करता, परमात्मा ने सृष्टि क्यों बनाई? इसमें परमेश्वर का भी कोई प्रयोजन रहा होगा। मौलाना बोले—"बहुत-से काम बिना प्रयोजन के भी होते हैं। आपने कोट पहना हुआ है। इसमें छाती पर जो बटन लगे हैं इनका तो प्रयोजन है। इन्हें बन्द कर लिया जाए तो ये सर्दी से बचाएँगे, परन्तु आपके कोट की बाँह पर जो बटन लगे हैं, इनका क्या प्रयोजन है?" पता नहीं पण्डितजी क्या उत्तर देते। श्री मुरारीलालजी बोले—"ठहरिए पण्डितजी! इसका उत्तर मैं देता हूँ। पण्डितजी बोले--आप अरब देश के रहनेवाले हैं। आपने ऊँट देखे हैं। कभी कार भी देखी है? कार में चार पहिए तो नीचे लगे होते हैं जिनसे कार

दौड़ती है और एक पहिया अलग रक्खा होता है जिसे स्टेपनी कहते हैं। यदि कार का पहिया पञ्चर हो जाए तो उसे खोलकर इस स्टेपनी को लगा देते हैं। इसी प्रकार कोट की बाँह के बटनों का भी प्रयोजन है। यदि कभी कोट का बटन टूट जाए तो बाँह का बटन खोलकर वहाँ लगा दिया जाए।

इसी शास्त्रार्थ में मौलाना ने 'ऊटपटाङ्ग' शब्द का प्रयोग कर दिया। इसका उत्तर भी श्री मुरारीलालजी ने ही दिया। उन्होंने कहा—"मौलाना! ऊँट तो अरब में ही अधिक होते हैं। अत: 'ऊँट पर टाँग' वहीं सम्भव हो सकती है यहाँ भारत में नहीं।"

एक शास्त्रार्थ में मौलाना सनाउल्ला ने कहा—"पण्डितजी! आपके सत्यार्थप्रकाश पर लघुशंका करना चाहता हूँ। पण्डितजी ने तुरन्त उत्तर दिया—"मौलाना! आपको मुँह से लघुशंका करने की बीमारी कब से हो गई। इसे थोड़ी देर अपने मुँह में ही रखिए।"

एक अन्य शास्त्रार्थ में इन्हीं सनाउल्ला ने कहा—"पण्डितजी! जहाँ आपके 'राम' समाप्त होते हैं ('म' पर) वहीं हमारे मुहम्मद साहब शुरु होते हैं, अत: अब आपको राम का नाम छोड़कर मुहम्मद का जप करना चाहिए।" देहलवीजी बोले—"शाबाश मौलाना साहब, शाबाश! मरहबा!! परन्तु मौलाना साहब! बीच में ही रुक क्यों गये। आगे भी कहो।" मौलाना बोले—"आगे क्या है? यह आप ही कह दीजिए।" पण्डितजी बोले—"जहाँ आपके मुहम्मद साहब समाप्त होते हैं ('द' पर) वहाँ से दयानन्द शुरु हो जाते हैं। इसलिए मुहम्मद साहब को छोड़कर दयानन्द के गीत गाओ।" मौलाना ने पूछा—"दयानन्द समाप्त कहाँ होते हैं?" देहलवीजी बोले—"दयानन्द तो जहाँ से आरम्भ होता है, वहाँ ही समाप्त होता है।"

एक शास्त्रार्थ में मुसलमान हारने लगे तो बोले—"पण्डितजी! हमें जल्दी में चोटी का विद्वान् नहीं मिला। दो मास पश्चात् हम यह शास्त्रार्थ पुन: करेंगे। तब हम चोटी का विद्वान् लाएँगे।" शास्त्रार्थ यहीं समाप्त हो गया। दो मास पश्चात् पुन: शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। पण्डितजी ने पूछा—"इस बार तो आप चोटी का विद्वान् लाये होंगे।" उनके 'हाँ' कहने पर पण्डितजी बोले—"इनका साफा (पगड़ी) हटाकर दिखाओ, इनकी चोटी कहाँ है?" बेचारे शास्त्रार्थ से पूर्व ही परास्त हो गये।

एक अन्य शास्त्रार्थ में मुसलमान विद्वान् को पुष्पमाला पहनाई गई। पण्डितजी बोले—"मौलाना! अब तो शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले ही

हार आपके गले में पड़ गई। अब कोई शक्ति आपको पराजित होने से नहीं बचा सकती।''

पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी एक शास्त्रार्थ करने के लिए ट्रेन द्वारा सहारनपुर जा रहे थे। ट्रेन देवबन्द स्टेशन पर ठहरी। मुसलमान एक मौलाना को बड़े स्वागत-सम्मान के साथ लाये। उनके गले में बीसियों मालाएँ पड़ी हुई थीं। दैवयोग से उन्हें देहलवीजी वाले डिब्बे में ही बैठा दिया गया। गाड़ी चली। पण्डितजी समझ गये कि सम्भवतः मेरा शास्त्रार्थ इसी व्यक्ति से होगा। सोचा देख भी लें यह कितने पानी में है। पण्डितजी ने उनसे पूछा—''मौलाना ! कहाँ जा रहे हैं। आपको ये लोग बड़े सम्मान से गाड़ी पर चढ़ाकर गये हैं।''

मौलाना बोले—''सहारनपुर एक शास्त्रार्थ करने जा रहा हूँ।''

''किसके साथ'', देहलवीजी ने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—''एक पण्डित देहलवी हैं, उनके साथ शास्त्रार्थ करना है।''

''शास्त्रार्थ कौन-से दिन है'', पण्डितजी का अगला प्रश्न था।

''शनिवार को'', मौलाना ने उत्तर दिया ।

''आज कौन-सा दिन है'', देहलवीजी ने पूछा।

''आज जुमेरात है'', उन्होंने उत्तर दिया।

पण्डितजी बोले—''मौलाना ! मैंने दिन पूछा है, आप रात बता रहे हैं।''

मौलाना समझ गये शायद इन्हीं के साथ शास्त्रार्थ होना है, अतः अगले स्टेशन पर उतरकर नौ-दो ग्यारह हो गये।

एक शास्त्रार्थ में मौलाना सनाउल्ला ने पूछा—''पण्डितजी ! आपके बाट कहाँ गये।'' (देहलवीजी ने एक स्वर्णकार के घर में जन्म लिया था, परन्तु अपनी विद्या, त्याग, तप के बल के आधार पर वे विश्वामित्र की भाँति ब्राह्मण बन गये थे)।

पण्डितजी बोले—''एक दिन अल्लामियाँ का पत्र आया था। लिखा था कि 'देहलवी ! तू तो पण्डित बन गया। ये बाट तेरे किसी काम नहीं आएँगे। कयामत के दिन मुझे आवश्यकता पड़ेगी, अतः इन्हें मेरे पास भेज दे।' मैंने उन्हें पार्सल करके आपके अल्लामियाँ के पास भेज दिया है।''

और अन्त में एक संस्मरण अपना भी। संन्यास लेने के पश्चात् सन्

१९७५ में मैं सूरिनाम चला गया। वहाँ साढ़े दस मास तक वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करता रहा। एक दिन एक ईसाई मिलने आया। बातचीत के प्रसङ्ग में कहने लगा। "ईसा ने हज़ारों मुर्दों को जिलाया। सहस्रों अन्धों को ज्योति प्रदान की, अनेक लूले-लङ्गड़ों को चङ्गा कर दिया, रोगियों को नीरोग कर दिया। मेरे जीवन में भी बहुत-सी समस्याएँ थीं, अशान्ति भी बहुत थी। जब से मैंने ईसाई मत को अपनाया, मेरी सारी समस्याएँ समाप्त हो गईं और मुझे शान्ति भी मिल गई। आप भी इसी मार्ग को क्यों नहीं अपना लेते ?"

मैंने कहा—"मेरे जीवन में न तो समस्याएँ हैं और न अशान्ति, फिर मुझे इस मार्ग को अपनाने की क्या आवश्यकता है? हाँ, आप एक बात तो बताइए, क्या आपको ईसा पर पूरा विश्वास है?"

वे बोले—"हाँ, मुझे ईसा पर पूरा विश्वास है।" मैंने कहा—बाईबिल में लिखा है—"यदि तुम्हें राई के दानेभर भी विश्वास है, तो इस पहाड़ से कहो उड़ जा और यह उड़ जाएगा।" पहाड़ तो बहुत बड़ी बात है, आप मेरे इस कमण्डलु से कहो कि 'उड़ जा'। यदि यह उड़ गया तो मैं अभी ईसाई बन जाऊँगा।" उसके पैरों तले से भूमि खिसक गई और तुरन्त वहाँ से चलता बना।

शमित्योम्

वेद-प्रकाशन के सम्बन्ध में

इस अंक में मूल वेद का एक पृष्ठ छाप रहे हैं। जो टाइप होगा। यही साइज होगा। एक पृष्ठ साढ़े दस इञ्च लम्बा और साढ़े आठ इञ्च चौड़ा होगा। आठ सौ पृष्ठ होंगे। वेदप्रकाश के साइज में सोलह सौ पृष्ठ। दो रंगी छपाई होगी।

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२००
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२००
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-००
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५००
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५००
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	६००
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	६००
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	८००
मातृ गौरव	*नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	१०००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	३.५०
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	२५००

वेदप्रकाश

ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

अथ प्रथमं मण्डलम्

प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः

प्रथमोऽनुवाकः

[१] प्रथमं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३-५, ७ गायत्री, २ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री, ६ निचृद्गायत्री, ८ यवमध्या विराड्गायत्री, ९ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ प्रथमवर्गः ॥ १ ॥

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्। होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥१॥
अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त। स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥२॥
अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त् पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे। य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥३॥
अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑। स इद्दे॒वेषु॑ गच्छति ॥४॥
अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः। दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥५॥

अथ द्वितीयवर्गः ॥ २ ॥

यद॒ङ्ग दा॒शुषे॒ त्वमग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑। तवेत्तत् स॒त्यम॑ङ्गिरः ॥६॥
उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम्। नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥७॥
राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम्। वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑ ॥८॥
स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व। सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥९॥

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः ॥ देवता—१-३ वायुः, ४-६ इन्द्रवायू, ७-९ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—१, २ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री, ३-५, ७-९ गायत्री, ६ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

अथ तृतीयवर्गः ॥ ३ ॥

वाय॒वा या॑हि दर्शते॒मे सोमा॒ अरं॑कृताः। तेषां॑ पाहि श्रु॒धी हव॑म् ॥१॥
वाय॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॒ त्वामच्छा॑ जरि॒तारः॑। सु॒तसो॑मा अह॒र्विदः॑ ॥२॥
वायो॒ तव॑ प्रपृञ्च॒ती धेना॑ जिगाति दा॒शुषे॑। उ॒रू॒ची सोम॑पीतये ॥३॥
इन्द्र॑वायू इ॒मे सु॒ता उप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम्। इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि ॥४॥
वाय॒विन्द्र॑श्च चेतथः सु॒ताना॑ं वाजिनीवसू। तावा या॑त॒मुप॑ द्र॒वत् ॥५॥

अथ चतुर्थवर्गः ॥ ४ ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्ष्वित्था धिया नरा ॥६ ॥
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ॥७ ॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥८ ॥
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ॥९ ॥

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—१-३ अश्विनौ, ४-६ इन्द्रः, ७-९ विश्वे देवाः, १०-१२ सरस्वती॥ छन्दः—१, ३, ५-१०, १२ गायत्री, २ निचृद्गायत्री, ४, ११ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ पञ्चमवर्गः ॥ ५ ॥

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती। पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१ ॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया। धिष्ण्या वनतं गिरः ॥२ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातं रुद्रवर्तनी ॥३ ॥
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥५ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥६ ॥

अथ षष्ठवर्गः ॥ ६ ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७ ॥
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्राइव स्वसराणि ॥८ ॥
विश्वे देवासो अस्त्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९ ॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति ॥१२ ॥

द्वितीयोऽनुवाकः

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २, ४-९ गायत्री, ३ विराड्गायत्री, १० निचृद्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अथ सप्तमवर्गः ॥ ७ ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥२ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५ ॥

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती अभिनन्दन

वृद्ध व्यक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धा और आदर-सम्मान प्रकट करने के लिए तथा नवयुवकों को उनके पदचिह्नों पर चलाने के लिए उनका मान-सम्मान करना ही चाहिए। आज आर्यजगत् में मूर्खों, शराबी और कबाबियों का सम्मान तो है, विद्वानों का नहीं। 'मनुर्भव' ऋग्वेद की इस सूक्ति को महर्षि मनु की लिखनेवाले अल्पपठित, सिद्धान्तशून्य, चरित्रहीन, सन्दिग्ध चरित, मिथ्याभाषी व्यक्तियों का भी सम्मान है, परन्तु वेद के मनीषी विद्वान्, सर्वात्मना आर्यसमाज के लिए समर्पित, आर्यसमाज के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करनेवालों को कोई नहीं पूछता। परिणाम सामने है—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां तु व्यतिक्रमः।
त्रिणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जहाँ मूर्खों का सम्मान होता है और विद्वानों का अपमान होता है, वहां तीन बातें अवश्यम्भावी है—दुर्भिक्ष, मरण और भय।

इस समय आर्यजगत् में विद्वानों का अकाल है, न नये विद्वान् आ रहे हैं और न संन्यासी, वानप्रस्थी। जो हैं वे जा रहे हैं और आगे आएँगे या नहीं यह भय है।

हमने आर्यजगत् के वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और अनुभववृद्ध स्वामी विद्यानन्दजी का अभिनन्दन करने का निश्चय किया है। वेदप्रकाश के साइज में लगभग ४०० पृष्ठ का अभिनन्दनग्रन्थ स्वामीजी को भेंट किया जाएगा। एक थैली भी भेंट करनी है। लगभग डेढ़ लाख रुपये इस योजना पर खर्च होंगे। छपने पर अभिनन्दन ग्रन्थ का मूल्य १५०.०० रुपये होगा। जो व्यक्ति जून १९९४ तक १००.०० रुपये भेज देंगे उन्हें यह ग्रन्थ डाक व्यय सहित १००.०० रुपये में मिलेगा। अभिनन्दन समिति के संरक्षक स्वामी सर्वानन्दजी महाराज हैं, अध्यक्ष हैं पूज्यपाद स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती और संयोजक हैं वेदों के युवक विद्वान् डॉ० रघुवीर वेदालंकार, एम.ए.। मैं दान भेजने की अपील नहीं करुँगा। केवल इतनी अपील अवश्य करूँगा कि भारी संख्या में सौ-सौ रुपये भेजकर अभिनन्दनग्रन्थ के ग्राहक बनें। स्वयं बनें और अन्यों को बनाएँ। आर्यसमाज के मन्त्री और प्रधान प्रयत्न करके १०-१० ग्राहक कम-से-कम अवश्य बनाएँ। आपके इस

सहयोग से एक विद्वान् का अभिनन्दन हो जाएगा।

निवेदक

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

यह अभिनन्दन ग्रन्थ संग्रहणीय होगा। ध्यान रहे यह विज्ञापनवाली स्मारिका नहीं है। इसमें उच्च कोटि के लेख होंगे। वस्तुतः बीसियों विद्वानों द्वारा लिखित एक अभूतपूर्व ग्रन्थ होगा। ग्रन्थ की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है—

१. सृष्टि की उत्पत्ति तथा विज्ञान—डॉ० फतहसिंह
२. वेदों में जैन तीर्थंकरों का वर्णन नहीं—डॉ० सुधीरकुमार गुप्त
३. वेदों में सम्बन्धवाची शब्दों पर विचार—डॉ० कृष्णलाल
४. वैदिक देववाद—डॉ० सत्यकाम वर्मा
५. योग का जीवन पर प्रभाव—डॉ० वेदव्रत आलोक
६. ऋषि दयानन्द की भाष्यशैली—डॉ० भवानीलाल भारतीय
७. निरुक्त तथा वैदिक आख्यान—डॉ० रघुवीर वेदालंकार
८. कर्मफल-व्यवस्था—प्रा० भद्रसेन
९. वेद प्रतिपादित ईश्वर—डॉ० सत्यव्रत राजेश
१०. ऋग्वैदिक भक्तिभावना का स्वरूप—डॉ० ओम्प्रकाश वेदालंका
११. वैदिक वाङ्मय में भाषाविषयक चिन्तन—डॉ० शशि तिवारी
१२. वैदिक संस्कृति—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती
१३. आत्मा की सत्ता एवं स्वरूप—स्वामी वेदरक्षानन्द
१४. महर्षि दयानन्द तथा षड्दर्शन—डॉ० कर्मसिंह
१५. उपनिषदों में राष्ट्रीय एकता—प्रो० बलदेवराज शर्मा
१६. वैदिक समाज दर्शन—पं० मनोहरजी विद्यालंकार
१८. सृष्टि की उत्पत्ति तथा सांख्य-वैशेषिक—डॉ० शशिप्रभा कुमार
१९. मोक्ष से प्रत्यावर्तन—श्री जितेन्द्रकुमार

इसके अतिरिक्त भी और बहुत कुछ। अपनी राशि इस पते पर शीघ्र भेजें—

डॉ० रघुवीर वेदालंकार
अध्यक्ष वेदमन्दिर,
बी-२६६, सरस्वती विहार, दिल्ली-३४

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

याज्ञिक आचार-संहिता	*पं० वीरसेन वेदश्रमी*	४५-००
प्राणायाम विधि	*महात्मा नारायण स्वामी*	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	*नरेन्द्र विद्यावाचस्पति*	१२-००
वेद परिचायिका	*डॉ० कृष्णवल्लभ पालीवाल*	५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	*कवि कस्तूरचन्द*	३-००
जीवात्मा	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	७५-००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१०-००
मुक्ति से पुनरावृत्ति	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	३-००
जीवन गीत	*धर्मजित् जिज्ञासु*	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	*महर्षि दयानन्द*	३-००
व्यवहारभानु	*महर्षि दयानन्द*	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	*सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	२५-००
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता	*पं० सत्यपाल विद्यालंकार*	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vol.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vol.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and his Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cuultural Study of Satapath Brahman	700-00
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150 00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	०-७५	Vedic Prayer	3-00

वेदप्रकाश

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१२-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२०-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Discourses	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	In Press

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१५०-००
षड्दर्शनम्	प्रेस में
चाणक्यनीति दर्पण (सजिल्द)	१००-००
चाणक्यनीति दर्पण (अजिल्द)	६०-००
विदुरनीतिः (सजिल्द)	८०-००
विदुरनीतिः (अजिल्द)	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	८-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्तिसुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामदेव सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामदेव शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	८-००

वेदप्रकाश

घर का वैद्य

लेखक : सुनील शर्मा

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	६-००	घर का वैद्य—हल्दी	६-००
घर का वैद्य—लहसुन	६-००	घर का वैद्य—बरगद	६-००
घर का वैद्य—गन्ना	६-००	घर का वैद्य—दूध-घी	६-००
घर का वैद्य—नीम	६-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	६-००
घर का वैद्य—सिरस	६-००	घर का वैद्य—हींग	६-००
घर का वैद्य—तुलसी	६-००	घर का वैद्य—नमक	६-००
घर का वैद्य—आँवला	६-००	घर का वैद्य—बेल	६-००
घर का वैद्य—नींबू	६-००	घर का वैद्य—शहद	६-००
घर का वैद्य—पीपल	६-००	घर का वैद्य—फिटकरी	६-००
घर का वैद्य—आक	६-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	६-००
घर का वैद्य—गाजर	६-००	घर का वैद्य—अनाज	६-००
घर का वैद्य—मूली	६-००	घर का वैद्य—फल-फूल	६-००
घर का वैद्य—अदरक	६-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी पच्चीस पुस्तकें पाँच आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी (सजिल्द)	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

अपने प्रेरणास्रोत

पूज्य श्री विजयकुमार जी

की पुण्य स्मृति में

महत्त्वपूर्ण घोषणा और दृढ़ संकल्प

चारों वेदों, मूल संहिताओं का भव्य प्रकाशन

इस समय चारों वेदों का मूल्य ३२०-०० रुपये है। हम एक जिल्द में चारों वेद केवल २५०-०० में देंगे। यह मूल्य लागतमात्र है और ३० जून, १९९४ तक अग्रिम ग्राहक बननेवालों के लिए है। प्रकाशित होने पर मूल्य ३५०-०० होगा। इस ग्रन्थ की विशेषताएँ—

१. शुद्धतम प्रकाशन। स्वामी गंगेश्वरानन्द जी द्वारा प्रकाशित वेदों में भी भयंकर अशुद्धियाँ हैं। अनेक विद्वानों के सहयोग से इसे शुद्धतम छापा जाएगा।
२. आधुनिक लेजर कम्पोजिंग से बहुत बढ़िया टाइप में मुद्रण होगा।
३. बढ़िया कागज, कलापूर्ण मुद्रण, पक्की जिल्द। सभी प्रकार से एक भव्य और नयनाभिराम प्रकाशन होगा।
४. १४ पाइंट में २३ × ३६/८ में मुद्रित होगा।

इस ग्रन्थ के प्रमुख सम्पादक होंगे
आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान,
अनेक ग्रन्थों के लेखक एवं संपादक

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती

दिसम्बर १९९४ में श्री विजय कुमार जी की पुण्य तिथि पर यह ग्रन्थ प्रकाशित हो जाएगा।

प्रेषण-व्यय—एक प्रति पर लगभग २०-०० पृथक् से देना होगा। जो व्यक्ति दुकान से लेंगे, उन्हें यह राशि नहीं देनी होगी।

यदि एक-एक समाज ५-५ या १०-१० प्रतियाँ मँगा ले तो प्रेषण-व्यय बहुत कम आएगा। शीघ्रता कीजिए, आर्यजगत् में इतना भव्य, दिव्य और नयनाभिराम प्रकाशन प्रथम बार हो रहा है।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

ओ३म्

हम सुखी कैसे रहें ?

विश्व का प्रत्येक मानव सुख चाहता है। सुख की इच्छा रखने वालों के लिए महामना चाणक्य महाराज के कथनानुसार **"न सन्तोषात् परं सुखम्"** अर्थात् सन्तोष को छोड़कर सुख प्राप्त नहीं हो सकता। अपने पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् ईश्वर द्वारा प्रदत्त फल में पूरा आत्मविश्वास रखना ही सन्तोष है।

किसी भी सुन्दर सी चीज को देखकर फिसल जाना सन्तोष नहीं अपितु असन्तोष की पराकाष्ठा है। साथ ही हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना भी सन्तोष की विडम्बना है।

परन्तु सन्तोष कहाँ करना है कहाँ नहीं करना, इस पर आचार्य चाणक्य कहते हैं कि—

सन्तोषः त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु नैव कर्तव्यः विद्यायां जपदानयोः॥

अर्थात् तीन चीजों में सन्तोष करना है और तीन में नहीं। अपनी स्त्री, अपना भोजन, अपना धन; इन तीनों में पूर्ण सन्तोषी रहना है और विद्या प्राप्ति में, जप करने में और दान देने में सन्तोष नहीं करना है।

अतः सुख प्राप्ति का एकमात्र साधन सन्तोष ही है।

बोध-कथा

बीमारी जिसका इलाज नहीं

एक व्यापारी के यहाँ घोड़ी और उसकी बछेड़ी थी। अचानक एक दिन घोड़ी को एक दुर्घटना में भयंकर चोट लगी। सब तरह के इलाज और देखभाल के बावजूद घोड़ी को बचाया नहीं जा सका, वह दम तोड़ बैठी। उसके पीछे उसकी बछेड़ी बच गई। उसके कारोबार में एक किसान की भी भागीदारी थी। व्यापारी उस बछेड़ी को लेकर किसान के यहां गया, बोला—इसकी माँ घोड़ी तो एक दुर्घटना में मर गई है, अब यह इसकी बछेड़ी बच गई है, तुम्हारे पास कई गाय-बैल-जानवर हैं, उनके साथ यह बछेड़ी भी पल जाएगी। किसान ने उसकी बछेड़ी को पालना मंजूर कर लिया।

कुछ ही महीने तक अच्छी खुराक और देखभाल से वह बछेड़ी पनप गई। सेवा-टहल से जल्दी उसकी कद-काठी निकल आई। बछेड़ी को एक अच्छी घोड़ी के रूप में पनपते देखकर उस किसान के यहां कई व्यापारी उसे खरीदने आए। चर्चा सुनकर घोड़ों का एक व्यापारी भी वहां आया और मुंह-मांगे पैसे देकर वह बछेड़ी खरीद ले गया।

बछेड़ी के बिकने के कई दिन बाद वह किसान व्यापारी के पास गया। बड़े दुःखी स्वर में बोला—"सेठ जी, अफसोस है कि आप की बछेड़ी बची नहीं, बीमार पड़ी और वह जाती रही।"

व्यापारी ने कहा—"आप हमारे पुराने साथी हैं आप से ऐसी उम्मीद नहीं थी। बीमार पड़ी थी तो खबर देते, उसका पूरा इलाज कराता। खैर, उसका हाड़ मांस ही दिखा दो।"

किसान व्यापारी को मुर्दाघर ले गया, जहां जानवरों की लाशें पड़ी थीं। उसने कई दिन पहले मरे एक बैल की हड्डियां व्यापारी को दिखायीं। व्यापारी ने ध्यान से उसे जांचा। बोला—"इसमें सींग कहां से आ गए ?" किसान बोला—"क्या करूं—इसे यही तो बीमारी हो गई थी, जिसका इलाज नहीं हो सका।"

प्रस्तुति—**नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

ओ३म्
वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ५] वार्षिक मूल्य : बीस रुपये [दिसम्बर १९९४

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

[प्रिय पाठकगण! इस बार हम आर्यजगत् के उज्ज्वलरत्न, सर्वस्व त्यागी, सचमुच वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी की एक दुर्लभ कृति 'ईश्वर-भक्ति' भेंट कर रहे हैं। यह ग्रन्थरत्न हमें श्री धर्मेन्द्रजी धींग्रा, बड़ौदा के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। आशा है पाठक इसका भरपूर लाभ उठाएँगे। पाठक इसकी भाषा पर विशेषरूप से ध्यान दें, शब्दों का संयोजन कितना मोहक और प्रिय है!]

—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥

—यजुर्वेद ३०।३॥

जो-जो नर अपना हित चाहें, भक्ति-मार्ग ही वे अपनावें।

'ईश्वर-भक्ति' की चार सीढियाँ (मंज़िलें) हैं। संस्कृतभाषा में इन चार सीढ़ियों के नाम—कर्म, ज्ञान, उपासना और साक्षात्कार हैं। एक का दूसरे से बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है। एक के सुधरने में दूसरे का सुधार और बिगड़ने में बिगाड़ है। इसी कारण से कर्म-काण्ड पर भलीभाँति आचरण करने से मनुष्य विवेकी हो जाता है और उसी के फलस्वरूप उपासना की मंज़िल में शान्ति प्राप्त होती है।

निश्चयात्मक शक्ति के दृढ़ हो जाने से ज्ञान की मंज़िल में बड़ी ही सहायता मिलती है फिर मनुष्य साक्षात्कार में विश्वास प्राप्त करके दृढ़ निश्चय द्वारा परमात्मा की ओर झुकता जाता है और अन्त में ईश्वर-भक्त की विचारधारा उस एक ओंकार की ओर बहकर एकता में लीन हो जाती है।

दुई[1] का परदा उठे दिलों से, न याद मैं हूँ न और तू हो,
यह चाहे चाहत में तेरे भगवान्! हमेशा डूबा दिले सबू[2] हो।
जिधर मैं देखूँ नज़र तू आये, तेरा ही जलवा हर एक सू[3] हो,
न हो मिजाज़ी[4] से दिल को रग़बत[5], हकीक़ी[6] में यार मूबमू[7] हो।

बस यहाँ ही मनुष्य की चेष्टाएँ समाप्त हो जाती हैं। (क्या था—अब क्या हो गया—कुछ कहने में नहीं आता—एक मामूली परस्पर भेद से प्रभु से वियोग हो जाता है) यह ईश्वर-भक्तों का इशारा है। समझ लिया इसे जिसने उसका दुनिया से किनारा है। मैं कोई योग्य लेखक नहीं हूँ, भूल-चूक को सज्जन पाठक अपनी उदारता से सुधार लें—यही निवेदन है। ओं शम्।

निवेदक

वसंत १९४० —स्वामी सर्वदानन्द

१. परायापन, २. घट, ३. ओर, ४. सांसारिक बातें, ५. लगाव, ६. प्रभु से प्रेम, ७. कण-कण।

कर्मकाण्ड

हुक्म है शरअ[1] का तू पाक-दिल[2],
हो नेक, सबसे मुहब्बत से मिल।

नेक काम मनुष्य को नेक बनाता है और बुरे कामों से मनुष्य बुरा बन जाता है। नेक काम से हृदय शुद्ध होता है और बुरे काम से अज्ञान बढ़ता है। नेक आदमी प्रभु का इच्छुक होता है और उन इच्छाओं का, जो मनुष्य को बुरे कामों की ओर खींचती हैं, दमन करता है। बुरे कामों का रास्ता पकड़ लेने से संसार में कष्ट और मुसीबतें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती हैं। कर्मण्यता मनुष्य को पापों से हटाकर कल्याण-मार्ग पर अग्रसर करती है। बुरे काम न करो—दुःख पाओगे, कमज़ोर हो जाओगे। यह बात सत्य है कि कोई भी पुरुष शुरू से ही अपने-आप बुरा या भला नहीं होता। जिस स्टेशन पर मनुष्य खड़ा है उसके एक ओर बुराई और दूसरी ओर भलाई है। यदि बेसमझी से वह अपने क़दम को बुराई की ओर बढ़ाता है तो उतना ही अधिक भलाई से दूर हो जाता है। पर, यदि वह सोच-समझकर भक्ति-मार्ग को ग्रहण करता है, तो उतना ही अधिक वह सुख पाता है। यही चक्कर आगे चलता हुआ एक को तो प्रभु से जा मिलाता है और दूसरे को संसार में ही घुमाता रहता है, परन्तु आजकल दशा ही बदल गई है, जिस काम के करने से मनुष्य का हृदय पवित्र और अन्तःकरण शुद्ध हो, उसे तो कोई विरला ही निभाता है। जिससे सबको आराम हो, दुःख-सुख में परस्पर सहयोग हो, अन्याय से किसी को कष्ट न हो उस काम को कोई कोई ही करता है, परन्तु आजकल बाहरी आडम्बरों का हर कोई शौक़ीन है और इनके विरुद्ध कही गई बातों पर कान तक नहीं धरता।

जैसे कोई मत ईश्वर की पूजा बिल्कुल चुपचाप करना अच्छा मानता है और कोई घण्टा-घड़ियाल बजाकर पूजा-पाठ करना ठीक मानता है, कोई माला से ईश्वर को जपता है तो दूसरा अग्नि तापता है, एक का मुख पश्चिम को है तो दूसरे का पूर्व को, किसी ने मोक्ष को एक प्रकार से माना, तो दूसरे ने उसे उल्टा जाना है, इस विषय में कहाँ तक कहें हर एक मत ने अपने को दूसरे से पृथक् करने का कोई-न-कोई निराला ढंग निकाला हुआ है। सब किसी हद तक ठीक हो सकते हैं, परन्तु वास्तविकता से सभी दूर हैं। मनुष्य ने बाह्य आडम्बर को ही सब-कुछ मानकर असलियत को खो दिया जिससे यह संसार के झगड़ों का केन्द्र बन गया। धर्म की तो यह आज्ञा

---

१. धर्म का सिद्धान्त अथवा नियम। २. पवित्र हृदयवाला।

थी कि मनुष्य नेक और शुद्ध आचरण करता हो, उसके हृदय में घमण्ड और अभिमान न हो, एक-दूसरे के साथ प्रेम का बर्ताव करें, शत्रुता के बीज बोने से और फ़साद करने से सदा डरे। यह तो ठीक है कि मनुष्यों में कुछ-न-कुछ भेद होता है, उसूल तो झगड़ों को मिटाता है, इसकी अज्ञानता से मनुष्य झगड़ों को उठाता है। असलियत तो यह है—

नेकी की ताकत नहीं, तो बदी[१] से परहेज़ कर।
अपने ऊपर ज़ुल्म करने से सदा ईश्वर से डर॥

मनुष्य का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह शुभ काम करनेवाला ही बने। यदि इसमें शुभ कर्मों की शक्ति न हो तो बुरे कर्मों से दूर रहना तो आवश्यक है। यही मार्ग संसार के हित और कल्याण का है। जब मनुष्य अपने स्वभाव को बुराई से हटाकर उसके प्रभाव को दिल से मिटा देता है तब उसका स्वयं नेकी करने का स्वभाव हो जाता है। चित्त की प्रवृत्ति किसी-न-किसी ओर होनी तो आवश्यक है, बुराई का द्वार बन्द होते ही भलाई का स्रोत आप ही खुल जाता है। जो मनुष्य किसी के साथ बुराई करता है, वह आज नहीं तो कल मुसीबत में फँसता है। अन्याय से किसी को दु:ख में पहुँचाना अपने-आपको स्वयमेव मुसीबत में फँसाना है। परमात्मा दु:खनाशक है—अत: जो मनुष्य किसी को मुसीबत से बचाता है वह भी अपनी योग्यता के अनुसार प्रभु के इस गुण का भागी बन जाता है। फिर कभी वह कष्ट नहीं पाता। प्रभु स्वतन्त्र है, अत: जो कोई किसी को बन्धन से मुक्त करता है, वह मुक्तिपद को पाता और प्रभु के समीप हो जाता है। प्रभु दयालु है, अत: जो किसी पर दया करता है वह अमरत्व प्राप्त कर कभी नहीं मरता। **हर बात में खुश रहना, बुरी बात मुख से कभी न कहना, सुख-दु:ख के आघात को शान्तिपूर्वक सहना, परमेश्वर की आज्ञा है।**

शुभ कर्मों के फलस्वरूप स्वास्थ्य, प्रसन्नता और सम्मान मिलता है, इसलिए मनुष्य बुरे कामों से बचे और भलाई के लिए आगे बढ़े। संसार के किसी प्राणी को दु:ख देना किसी भी धर्मवान् का कर्त्तव्य नहीं है। मेरे भाई! तनिक इन उसूलों पर ध्यान दो कि ये मनुष्य को दुनिया के रास्ते से निकालकर प्रभु से मिलाप की ओर किस प्रकार ले-जाते हैं। जो मनुष्य किसी को अन्याय से कष्ट पहुँचाता है वह प्रभु से दूर हो जाता है। भलाई करना, बुराई से दूर रहना और परहेज़गारी[२] का जीवन बिताना परमेश्वर को प्राप्त करने का एक विशेष मार्ग है। धर्म ही एक सच्चा मार्ग है जो प्रभु तक जा पहुँचाता है—इसपर चलनेवाला कभी भटकता नहीं। वह उपाय जो प्रभु से मिलाप में सहायक हो, उसपर आचरण करने से भला कौन कष्ट पा सकता है? मनुष्य की गिरावट का मुख्य कारण दूसरों को दु:ख पहुँचना ही है।

---

१. बुरे काम। २. इन्द्रिय-निग्रह, संयम।

बुराई या भलाई जो हैं करते,
सदा उसका हैं वैसा फल वे भरते।

मनुष्य बुरे या भले काम के प्रभाव से कभी बच नहीं सकता। यह नियम बड़ा दृढ़ और सूक्ष्म है। सारा संसार इसी नियम के अनुसार चल रहा है। किसी के पाँव सफलता चूम रहे हैं तो कोई अपने (व्यक्तित्व) को ही मिटा रहा है। विशारदों ने खोज की है यह नियम तो सदा से जैसा-का-तैसा रहा, रत्तीभर भी नहीं बदला। मनुष्य पहाड़ों की कन्दराओं में जाकर अपने को छिपाए, चाहे अपने को सागर की तह में जा बिठाए और चाहे आकाश में उड़ जाए—पर इस संसारभर के राज्य में कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ कर्म अपने परिणाम से पीछा छुड़ा सकें। इसीलिए विद्वान् ने कहा है कि जो मनुष्य औरों के साथ बुराई अथवा भलाई करता है, उसका परिणाम लौटकर उसी को प्रभावित करता है, जिससे सांसारिक दुःख या सुख पैदा होता है और यदि भला काम फल की इच्छा से रहित हो, जिसमें दिखावट या बनावट का लगाव न हो तो वह (भलाई) कर्त्ता को मोक्ष की ओर ले-जाता है। इसलिए धर्म की यह आज्ञा है कि बुरे कामों का त्याग ही करना चाहिए। नेक कार्य यदि फल को दृष्टि में रखकर किया जाए तो वह सांसारिक सुख देता है परन्तु यदि भलाई फल की अनिच्छा से की जावे तो उसका फल मोक्ष है। अब मनुष्य को अधिकार है कि जिधर को चाहे अपनी गति बढ़ाए—

शरअ[1] का फरमान[2] है नेकी से सारे काम कर।
मत बदी[3] कर भूल से, मत किसी को बदनाम कर।।

अब आप सुख देनेवाले शुभ गुणों पर ध्यान दें—शुद्ध मति, सच्चा ज्ञान, सहनशीलता, होशियारी, सत्यता, पवित्रता, इन्द्रिय दमन, मनोनिग्रह, सुख-दुःख की अधिकता में निर्लेपता, बुरे कामों से भय, सत्कर्मों में निडरता, दया, आराम, सन्तोष, भक्ति, दान, शुभ-कामना, नशा से परहेज़ आदि अच्छी बातें प्रभु की ओर ले-जाती हैं। जिन गुणों से सबको लाभ और संसार में शान्ति स्थापित हो वे ईश्वर की आज्ञा हैं, उनका पालन करना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है और जिन मनुष्यों में ये गुण हों वे देवता कहलाते हैं। देवता का कोई विशेष प्रकार का शरीर नहीं होता—देवता तो गुणवान् को कहते हैं।

जिन बुरे कर्मों से मनुष्य स्वयं कष्ट उठाता और औरों को कष्ट पहुँचाता है वे सब दुष्टों के प्रिय दुर्गुण हैं, जो निम्नलिखित हैं—अज्ञान, बुराई करना, कुविचार, कुकर्म, बुरी नियत, बुरे दृश्य देखना, दुष्कर्म करना, स्वार्थपरता, आत्मश्लाघा, भीरुता, सुस्ती, नुक्ताचीनी, व्यर्थ क्रोध, धर्मान्धता, घमण्ड,

---

१. नियम, धर्म, २. आज्ञा, ३. बुरे काम।

अयोग्य इच्छा, लोभ, तृष्णा, बेहूदा बोलना, अनम्रता, बुरा स्वभाव, बुरे संग में प्रीति, विद्याभ्यास में घृणा, अज्ञानता और दुष्कर्मों में प्रवृत्ति।

इन उपरलिखित दुर्गुणों से मनुष्य शैतान बन जाता है।

शैतान कोई विशेष प्रकार का देहधारी नहीं। जिसमें ये बुराइयाँ हों वही मनुष्य शैतान है।

इन दोषों में से बहुत-से एक-जैसे और एक ही अर्थ रखनेवाले जान पड़ते हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है उनमें थोड़ा-थोड़ा भेद है। जैसे तृष्णा व लोभ दोनों समान दीखते हैं पर उनके अर्थ में थोड़ा भेद अवश्य है, ऐसा ही सब जगह जान लें। ये सब बुरी या भली आदतें किसी मनुष्य में एक ही समय प्रकट नहीं होतीं—समय आने पर अपने बल को बढ़ाती हैं। एक के प्रकाश में दूसरी दब जाती हैं। उनके बढ़ाव-घटाव को जाननेवाला मनुष्य सद्गुण को उभारकर बुरी आदतों से अपना पीछा छुड़ा लेता है। इस नियम से ही मनुष्य सुख पाता है और प्रभु के समीप होता है।

उपासना काण्ड

मनुष्य बिना अहंकार के रहे। सत्कर्म के करने से मनुष्य को जो अभिमान-सा हो जाता है उसका नाम अहंकार है। संस्कृतभाषा में इसे अहंता (अहंभाव) अथवा 'ममता' कहा है। कोई भी सत्कर्म अहंकार के साथ मिलकर अपने असली स्वरूप में नहीं रहता, परन्तु वह किया हुआ कर्म न किये के तुल्य हो जाता है। विद्वानों ने इस दोष को दूर करने के लिए बड़े सुन्दर उपदेश दिये हैं। उनका वचन है कि यदि बाएँ हाथ से कोई शुभकाम किया जाए तो उसका ज्ञान दाएँ हाथ को भी न हो। यदि मस्तिष्क किसी के साथ भला करे तो मन उससे बेखबर रहे—ये वचन मनुष्य को इस बुरी आदत (अहंकार) को छुड़ाने के लिए काफी हैं। मनुष्य से यदि कोई काम अच्छा हो जाता है, तो वह अपनी प्रशंसा सुनने के लिए हर ओर कान लगाये रखता है। यदि कोई उसकी बड़ाई न करे तो फिर वह विवश होकर लोगों के सामने अपनी प्रशंसा स्वयं ही करने लग जाता है। यह एक ऐसा कड़ा बन्धन है, ऐसी कड़ी जञ्जीर है कि मनुष्य का इससे स्वतन्त्र होना बड़ा कठिन है। अपनी प्रशंसा चाहना अपने-आपमें एक बड़ा भारी पाप है। इसके प्रभाव से रसायन भी निष्फल हो जाता है।

बीज अपने को छुपाता है तो वृक्ष पैदा होता है और जो बीज बाहर पड़ा रहता है, वह या तो पद-दलित हो जाता है या उसे पशु-पक्षी खा जाते हैं। इसको संस्कृतभाषा में निष्काम कर्म कहा गया है। प्रभु-भक्तों के मत

में इसे नाश होनेवाला लिखा है, जैसे धान के ऊपर के छिलके को अलग कर देने से फिर वह खाने के काम तो आता है, परन्तु आगे उत्पत्ति करने के योग्य नहीं रहता। सत्य कर्म के साथ प्रशंसा का लगा हुआ छिलका मनुष्य को संसार में बार-बार लाने का कारण बनता ही रहता है। इसे दूर कर देने से नाशवान का नाश हो जाता है और शेष संसार मे रह जाते हैं।

प्रभु-भक्त इस बात को जानकर कर्म करते हैं और सत्यपथ में जा लीन होते और फिर साक्षात्कार में जाकर आराम पाते हैं। इसलिए अपनी प्रशंसा आप करना भारी भूल है। लिखा है--

तारीफ़ अपनी आप मत करना कभी तू भूल कर,
ऐब अपना देख ऐबे ग़ैर पर मत कर नज़र।

जो मनुष्य इस बुरी आदतवाला है वह अँधेरे में है। उच्च-से-उच्च मनुष्य भी अपनी प्रशंसा करने से छोटा और पवित्र होने पर भी खोटा हो जाता है। यह एक प्रकार का पाप है जो मनुष्य में परदोष निकालने का स्वभाव बढ़ाता है और उसे संसार में नाकारा बनाता है। स्वार्थी पुरुष अच्छे पुरुषों के संग से घबराता है और कोई विचारशील मनुष्य उसको समीप नहीं आने देता। स्वार्थता सत्य-पथ से हटकर कुमार्ग पर चलती है और फिर दु:ख को समीप लाती है। बुद्धिमान् मनुष्य वह है जो अपने दुर्गुणों पर ध्यान रक्खे और दूसरे के दुर्गुणों की पड़ताल न करे।

स्वार्थ से काम सारे दुनिया में हैं बिगड़ जाते
गुप्त कहाँ वह भेद जिसे सभा में हैं सुनाते।

स्वार्थ से सब काम बिगाड़ जाते हैं। इससे चोट खाकर फिर वे बनने में नहीं आते जैसे किसी भेद को जनसाधारण की सभा में सुनाकर यह बताना कि यह गुप्त भेद है, किसी से मत कहना। इस वचन से केवल लोगों को हँसाना और अपने को मूर्ख बनाना है। जो मनुष्य स्वार्थी हो जाता है, वह स्वयं अपने-आपको धोखा देता है और वह शुभ आचरण को बेचकर दुराचरण को मोल लेता है। इससे सुख-दु:ख में समभाव जाता रहता है और पद-पद पर कष्ट आते हैं। यह स्वार्थ एक बला है जो शरारत को जगाती है और जो कभी दूर नहीं होती। स्वार्थता एक आत्मिक व्याधि है जिसके साथ असत्य बोलना भी शामिल है। स्वार्थ को पूरा करने के लिए झूठ और धोखा देना भी उसका स्वभाव हो जाता है—

हुआ दिल आलूदा[१] हिरसो[२]-हवा से
नहीं चमकता फिर वह [३]नूरे खुदा से।

प्रभु से मिलाप तो मनुष्य को प्राप्त ही है और यह सदा उसके समीप है। व्याप्य वस्तु व्यापक से भिन्न नहीं हो सकती। केन्द्र और घेरे का सम्बन्ध

---

१. लिप्त, २. लोभ-लालच, ३. प्रभु की ज्योति।

सदा से है। अनुचित सांसारिक विचार मनुष्य के चित्त को हर समय परेशान करके उसकी पवित्रता को तृष्णा से बिगाड़ देते हैं। इसलिए बुरे काम की ज़िम्मेदारी से बचने के लिए जीवन के कार्य-क्रम को सत्य तथा उचित प्रकार से बनाना आवश्यक है। मन की शुद्धता के बिना जो पुरुष प्रभु के दर्शन की चेष्टा करता है वह भूल पर है। जैसे जब तक 'र' के आगे 'व' न लिखा जाए तब तक 'ख' नहीं बन सकता बस जब तक मन शुद्ध न हो प्रभु-प्राप्ति नहीं होती। फिर अन्तःकरण प्रकाशित हो कर प्रभु के दर्शन से स्वयमेव आह्लादित हो जाता है। मन की शुद्धता के बिना प्रभु-प्राप्ति के लिए मनुष्य जिस प्रकार की चेष्टा करता है वह सब व्यर्थ जाती है, अतः उपासना की विधि से चित्त की चञ्चलता को दूर करके परमेश्वर प्राप्ति के योग्य बना ले तो ज्ञान-पथ की ओर उसका पग बढ़ सकता है, इसके बिना नहीं। इसलिए, प्रभु-भक्तों का वचन है—

दिलवर[१] तेरा तेरे आगे खड़ा है,
मगर नुक़्स[२] तेरी नज़र[३] में पड़ा है।

जिसकी खोज में लोग हैरान व परेशान हैं वह तो सामने खड़ा है, परन्तु लोग इसको इन बाहरी आँखों से देखना चाहते हैं। उनकी आँखों से जो वस्तुएँ दीखती हैं वे सब महसूस की जाती हैं, परन्तु परमात्मा अङ्गों से परे है, इसलिए वह किसी भी अङ्ग से मालूम नहीं हो सकता है। ठीक मस्तिष्क का दूसरा नाम ज्ञान है। प्रभु-भक्त अपने-अपने अनुभव से उसे देख सकते हैं, परन्तु उसको संसार के झूठे प्रेम ने बुरा बना दिया है। जब तक यह बुराई दूर न की जाए तब तक उसका दर्शन कठिन है। जैसेकि आँख से सुनने का और कान से देखने का कार्य कठिन है, इसलिए प्रभु-भक्त मन की शुद्धि के लिए ठीक यत्न करता है और वह उन्हीं पुस्तकों का पठन-पाठन करता है जिसमें यह विषय हो। उन मनुष्यों की संगति में जाना पसन्द करता है, जो उसमें दक्ष हैं। संसार का कोई भी ऐसा कार्य जो इस मार्ग में रुकावट डाले, उसे वह नहीं करता। यह वह उपाय है जिससे लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

जब शत-सहस्त्र इच्छाओं से सब हृदय कलुषित होवे
फिर कहाँ प्रभु की ज्योति से अन्तर आलोकित होवे?

इच्छाओं का बढ़ते जाना हृदय में एकाग्रता उत्पन्न नहीं होने देता। अभिलाषा हृदय-रूपी सागर में एक लहर-सी उठाती है, फिर उससे दूसरी-तीसरी लहरें स्वयमेव बनती जाती हैं—इस अवस्था में हृदय में मैल बढ़ता जाता है। यह बार-बार जीवन और मृत्यु की आफ़त को साथ लाती

---

१. प्रियतम, २. दोष, ३. दृष्टि।

है। इससे पीछा छुड़ाना ही मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है, परन्तु हर एक के विचार की यहाँ पहुँच नहीं। अनुचित इच्छा से हृदय की शुद्धता नहीं, दोषयुक्त स्वभाव को दूर करनेवाली पुण्य कमाई नहीं, परन्तु जो आचरण के प्रेमी हैं, जो इस गूढ़ विषय को हल करने के योग्य हैं, वे सदा कम होते हैं। हर कोई इस पथ का पथिक नहीं है। जिसके पूर्व शुभ कर्म सहायक हो वर्त्तमान का पुरुषार्थ ठीक प्रकार से हो और प्रभु की कृपा सहायता दे, वही इस मार्ग पर चल सकता है और वह निश्चय भाग्यवान् है जिसको योग्य पथ-प्रदर्शक मिले, परन्तु आजकल योगियों की, गुरुओं की और गुरु-मन्त्रों की बड़ी ही चर्चा हो रही है; इसके पीछे संसार की एक भारी संख्या अपनी सुध-बुध खो रही है। बड़ी विचित्र बात है कि जो चीज हर अवस्था में कम होनी चाहिए, जिसकी कमी ही सुन्दरता की द्योतक है, जिसकी अधिकता से प्रकृति भी डरती है। मनुष्य अपनी अधूरी चेष्टा से यदि इसी ओर प्रयत्नशील हो तो सिवा बुरे परिणाम के और क्या हो सकता है। प्रत्येक सम्प्रदायवालों ने अपने शिष्यवर्ग को बढ़ाना और उन्हें अपने सिद्धान्त का अन्ध-विश्वासी बनाना ही अपना विशेष कर्त्तव्य जान लिया है। भारतवर्ष इस बात का दीवाना है, इसलिए तो इसके लिए न कोई खड़े होने का स्थान है और न कोई ठहरने का ठिकाना। कितनी भूल है, कितना अन्धविश्वास है कि गुरु को परमेश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया जाए! इससे प्रकट है कि यह देश सत्य-मार्ग पर आरूढ़ नहीं! ऐसी अनुचित चेष्टा हृदय की शुद्धता प्रकट नहीं करती परन्तु भूल को जताती है। विद्वानों का तो कथन है—

जिन्दगी को रास्ती[१] से तू गुज़ार
कर्म फल से फिर रहेगा सुबकसार[२]।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन को सत्यमार्ग पर ही चलकर व्यतीत करे और बनी हुई बात को अपने हाथ से न बिगाड़े। यह नियम कर्म के फल से मुक्त होने का है। मनुष्य बुरे कार्य के बोझ से हल्का हो जाता है। अन्तःकरण की प्रवृत्ति विश्व-प्रेम में झुक जाती है, फिर सत्कर्मों से मेल और दुष्कर्मों से बैर हो जाता है। सुख में उसी प्रभु का धन्यवाद और दुःख में शान्ति अनुभव करने का स्वभाव हो जाता है। फिर जीवन में न तो अधिक आनन्द और न मृत्यु से अधिक घबराहट होती है। हरएक को सुखी देखकर खुश होना और दुःख में हाथ बटाना उसका स्वभाव

---

१. सत्यता, २. बरी, मुक्त।

हो जाता है। इन नियमों के पालन करने से मनुष्य में मनुष्यता आ जाती है, यदि ऐसा न हो तो लोभ-लालच आदि के प्रभाव से हृदय घबराता है। मनुष्य को सांसारिक कारोबार में सच्चा रहना चाहिए और कभी भी मुख से झूठ या कटुवचन न कहना चाहिए। व्यवहार और व्यापार में नेकी से काम करना चाहिए और धोखा-देही से डरना चाहिए। इससे मान-मर्यादा और शुभ कमाई प्राप्त होती है।

निश्चय से और विचारशील की सङ्गति से आत्मा अमर हो जाता है। यह विचार बहुत अच्छा है जिसके अनुसार निश्चय करने से परमात्मा का मिलाप होता है। **कामवासना की अधिकता से डरना, गृहस्थ के नियमों को भली प्रकार से पालना, लोभ और इच्छाओं से पराजित न होकर इनपर विजय पाना, यह मनुष्य का बड़ा कर्तव्य है। इस कर्तव्य को पूरा करते रहना मनुष्य को बुद्धिमान् बनाता है और उसको कभी भी बेचैनी में नहीं ले-जाता है।** इस प्रकार से जीवन बिताना ठीक है। जो इसपर आचरण करता है वही पूरा मनुष्य है; जो इन नियमों का पालन नहीं करता वह चाहे किसी का गुरु हो या शिष्य, वह गँवार है। जाँच करने से यह प्रमाणित हो चुका है कि जब तक मन अनुचित इच्छाओं से बरी न हो तब तक भलाई की लता कैसे हरी हो सकती है। वह मनुष्य इस पथ में कैसे गति करेगा, जिसके नेत्रों में मनुष्य-पूजा की धूल पड़ी हो। **मनुष्य को परमेश्वर से अधिक मानना भलाई को बेचकर बुराई को मोल लेना है, जो ऐसा करते हैं वे सच्चाई से घबराते हैं और झूठ के समीप हो जाते हैं।** गुरु तो अपनी चतुरता से माल उड़ाने लगे और शिष्य-जन धोखे में आने लगे। कैसी बात है जिसका न मोल है और न पात है, केवल वहम-परस्ती है, जिससे मनुष्य-समाज पर बड़ा ही आघात है। हाँ, यह सत्य है, इस काम को वही कर सकता है जो संसार को पढ़ाने और दुनिया से कमाने की अक़्ल रखता हो। हर एक इस विद्या में प्रवीण नहीं। इस मनुष्य-पूजा से तो यह प्रकट है कि—

भूलकर हमने खुद को कैसा अन्धा आपा किया,
अपनें घर के बीच में आप ही को गुम किया।

मेरे मित्र! मनुष्य-पूजा प्रभु-पूजा के उच्च नियमों को मनुष्यों के दिलों से दूर हटाकर उनको कङ्गाल बना देती है। यह ऐसी भूल है जैसेकि जिह्वा और कान रखनेवाला खुद को गूँगा-बहरा बना दे या अपने ही घर का स्वामी गुम हो जाए। ऐसी बातों का बनाना केवल अपनी भूल पर लोगों को हँसाना है। **जो जिसके योग्य हो उसको वैसा समझना, जिसकी मनोवृत्ति संसार के उपकार में हो उसका मान करना, उसके उपकार को न भूलना, भला ही है।** मगर उसको भूल जाना चाहिए। यह जो कुछ कहा गया है उपासना की सीढी के विपरीत होने से कहा है। यह तो मनुष्य के

स्वभाव को शुभ बनाकर परमात्मा की ओर जो सर्व भलाइयों का केन्द्र हैं, ले-जाती है। इसके प्राप्त किये बिना साक्षात्कार की सीढ़ी किसी को नहीं मिलती है। उपासना की रीति बुरे रास्ते पर चलनेवाले भूले दिल को, जो इसका शत्रु और बुराई चाहनेवाला हो जाता है, बचाती है। इसके सहारे ही अगर मनुष्य में बनावट का स्वभाव न हो, दिल पर काबू हो जाता है। बस इसके जीतने से जग जीता जाता है। इस एक इशारे पर दुनिया के सब विद्वान् सहमत हैं। यही एक बात है कि जिसपर चलने से मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त करके सदा के लिए प्रसन्नचित्त हो जाता है। इस काम के करने को इस नियम पर कटिबद्ध होना चाहिए जिससे आगे-आगे आत्मा की शक्ति बढ़ती जाए और सांसारिक मोह के जञ्जाल से कमज़ोरी सामने न आये वह यह है—

आँख कान मुख मूँदके नाम निरञ्जन लेय,
अन्दर के पट तब खुलें जब बाहर के पट देय।

देखने योग्य वस्तु को न देखना और न देखने के योग्य को देखना, आँख को बन्द करना है। सुनने के योग्य शब्दों को न सुनना और न सुनने योग्य शब्दों को सुनना, कान को बन्द करना है। फ़िजूल बातों से जिह्वा को न रोकना और शुभ और हित की बातों का न कहना जिह्वा को बन्द करना है। इस अमल के दृढ़ हो जाने से, प्रभु-भक्त की शर्त है कि आत्म-साक्षात्कार और प्रभु-दर्शन न हो तो मुझे झूठा समझो, मेरा उपहास करो। यह अमल बार-बार परमात्मा के गुण के प्रकट होने में, उसके प्यार में, बड़ा ही सहायक है, परन्तु आजकल इसपर अमल ग़लत तरीक़े से हो रहा है। घण्टा दो घण्टा के लिए आँख, कान, मुख को बन्द करना ही शुभ काम मान लिया गया है। यह किसी सीमा तक साधन के रूप में तो ठीक हो सकता है अगर इससे ठीक रास्ता खुल जाए, मगर यह नहीं होता है। असली नियम जिसमें भूल नहीं है, वह ऊपर लिखा गया है कि आँख, कान और जिह्वा का ठीक रास्ते में जाना सिद्धि का कारण हो सकता है, इसके बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। अङ्गों के द्वारा बाहरी धूल जो दुनियावी असर लेकर अन्तःकरण में जमा होती है वही उसके जीवन को बरबाद करने में बल पकड़ लेती है। इन इन्द्रियों और संस्कारों के दोष से दूषित होकर मनुष्य जानता हुआ न जानने और सुनता हुआ न सुनने के बराबर होता है। यह दुनिया में देखा जाता है। यह बात सही है, ग़लत नहीं है। दिखावटी अमल करनेवाले जो भीतरी शक्ति को नहीं सँभालते हैं, उनका स्वभाव ज़्यादातर कठोर देखा गया है और बाहरी आडम्बर में फँसकर कुछ अभिमान और कुछ अपने बड़प्पन की स्तुति सदा करते ही रहते हैं, इसलिए यह सारी बनावट मतलब निकालने के लिए ही प्रमाणित होती है और जो भले लोग

ठीक रास्ते पर चल रहे हैं वे किधर से आते हैं और कहाँ को जाते हैं, कुछ पता नहीं चलता। दुनिया के चाहनेवालों का इस रास्ते में कदम नहीं बढ़ता और अगर दिखावट के लिए बढ़े तो कदम-कदम पर गिरता पड़ता है, इसलिए उपासना मनुष्य की अन्दर की सफाई को ठीक करके असली जगह तक पहुँचाती और उसे परमात्मा से मिलाती है।

ज्ञानकाण्ड

ज्ञान यह कहता है कि मनुष्य को अपने-आपका नाश कर देना चाहिए। यह ऐसा शब्द है कि जिसको सुनने से मनुष्य घबरा जाता है और कुछ समझ न आने से मुरझा जाता है। फिर कुछ करते बन नहीं पड़ता। न चलने की ताकत और न रहने की जगह का दृष्टान्त सामने आता है, परन्तु ऐसा नहीं। यह प्रभु-भक्तों का केवल एक इशारा है। इसको ही गीता में कर्म-संन्यास या कर्म के नाम से कहा है। यह ऐसा अद्‌भुत तरीका है कि मनुष्य कर्म तो करता है, परन्तु उसके बन्धन में नहीं आता है। कर्म होना और कर्म करनेवाले को उसके परिणाम से मुक्त रहना यह कितना बुद्धिमत्ता का काम है। यह मनुष्य की विचारधारा के बहाव में कितनी तेज़ी है। हर एक मनुष्य इस भेद से परिचित नहीं हो सकता। अज्ञानता के अन्धकार को अपने हृदय से नहीं धो सकता है। यह प्रभु-भक्तों का एक भेद है। दुनिया का सुख उसके दिल में नहीं समाता है।

जो प्रभु-प्रेमी है संसार उसको पागल कहता है, परन्तु उसका मन हर समय एकाग्र रहता है। संसारवालों की दृष्टि में वह नष्ट हो चुका है, परन्तु वास्तव में वह सबसे सुखी है। न किसी की कुछ सुनता है और न किसी को कुछ कहता है वह सदा अपनी ही उधेड़-बुन में लगा रहता है। उसके आगे मुक्ति खड़ी हँसती है। वह कभी रोता और कभी हँसता और कभी विनय करता है। ज्ञात नहीं कि वह इंस स्थिति में किसको याद करता है। जब मनुष्य अपने सच्चे उद्देश्य की ओर जाता है तो इसके बदले में फल भी पाता है। जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व को मिटाता है वह उसके बदले में अमर हो जाता है। सबके ऐसे भाग्य कहाँ जो इस अवस्था को प्राप्त हों। हर एक के ऐसे भाग्य कहाँ जो इस मार्ग में जाएँ। अपने आपको मिटाना यह हर एक के वश की बात नहीं। इससे मनुष्य की सुध-बुध बिगड़ती, और हर एक प्रकार के विचार बिखरते हैं। जो इसके शौकीन हैं, वे ही संसार के झगड़े मिटाने में योग्य हैं। उनके न बुद्धि है और न इच्छा है कि संसार को रिझावें और अपनी सुध के लिए इसको अपने जाल में फँसाएँ। उसका मन पवित्र है। उसके सामने केवल संसार के रचनेवाले का चित्र है, उसका

मन केवल इसी में लगा है। न किसी से धोखा है और न किसी से दग़ा। वह न किसी के आगे हाथ फैलाते और न घर-घर जाकर ठोकरें खाते हैं। संसारवालों का जिस वस्तु से प्रेम है उनकी दृष्टि में वह केवल मिट्टी के समान है। संसारवाले संसार को मरकर छोड़ते हैं, परन्तु यह जीते जी इस संसार को मिथ्या जानकर अपना सम्बन्ध तोड़ देते हैं। सच है जिनके हृदय से अज्ञानता का अन्धकार दूर हो जाता है वे इस अवस्था में जाने के लिए विवश हो जाते हैं। किसी विद्वान् ने कहा है—

जो कोई बेनिशाँ के पीछे जावे।
करे गुम आपको तब उसको पावे॥

निशान के साथ बेनिशान की तलाश नहीं होती है। जिसके कर्म खोटे हैं वह संसार में किस प्रकार सुखी रहेगा? ऐसे मनुष्य से संसार को कोई लाभ नहीं जिसके विचार खोटे हैं। खोये हुए को पाने के लिए अपने-आपको खोना होता है। वही उसको प्राप्त कर सकता है, जो उसकी जुदाई में हर समय तड़पता है। न सोता है और न जागता है। इस स्थान पर पहुँचकर मनुष्य की दृष्टि में हर वस्तु एक-सी हो जाती है। हर मनुष्य एक-सा है। कोई राजा हो या रङ्क, वह ऐसी बुद्धि के प्रभाव में नहीं आता, जो एक को दूसरे से पृथक् करती हो। जब अन्धकार का पर्दा उठ जाए, तब वह सांसारिक वस्तुओं से कैसे प्रेम बढ़ाए? वह इस शरीर को नाशवान् समझता है और इसके अधिक देर तक संसार में रहने से दुःख मानता है। जैसे—

है रुकावट तू ही उसके दरमियाँ।
वरना वह जाहिर यहाँ और है वहाँ॥

ठीक है, जब प्रेमी समीप होता है, तब फिर उसकी जुदाई बहुत ही दुःखदाई हो जाती है। उस समय जो वस्तु रास्ते में हो, वह रुकावट डालती है। इससे बड़ी ही व्याकुलता बढ़ जाती है। जबतक वह रुकावट दूर न हो जाए, प्रेमी मुख से पर्दा न उठा दे, मन में शान्ति नहीं आती।

यह नियम साधारण बातों में कार्य करता हुआ दिखाई देता है। विद्यार्थी पाठशाला और कॉलेजों में विद्या पढ़ते हैं। परीक्षा का समय जितना समीप आता जाता है, उतना ही उनके मन का लगाव उधर बढ़ता जाता है। वह हर एक कार्य से पृथक् होकर केवल उसी की रचना में मगन रहते हैं। किसी उत्सव या प्रदर्शनी में जो तीन-चार मील की दूरी पर हो रही है, लोग देखने के लिए जाते हैं। जितना उसके समीप होते जाते हैं, उतना ही उनकी चाल तेज होती जाती है और जब वह दृश्य सामने आ जाता है तो उस थोड़े-से मार्ग को दौड़कर समाप्त करते हैं। बस जितना किसी के साथ प्रेम होगा, उतना ही यह नियम उसपर लागू होगा।

प्रभु-भक्त ने अपने स्वभाव को सांसारिक प्रेम से हटा लिया, और

इस संसार को नाशवान् जानकर इससे न्यारा हो गया। मन की शुद्धि ने उसको मार्ग दिखाया, घर-घर में भटकना छोड़कर केवल एक सच्चे प्रभु से भिक्षा की याचना की। पूर्व संचित कर्मों ने भला किया, एकान्त ने खुशी को जगा दिया। महात्माओं के सत्सङ्ग और अच्छी सङ्गति ने ज्ञान के प्रकाश को जगा दिया। कहाँ तक क़हें, सब झगड़ों को मिटा दिया। प्रारब्ध से मिला हुआ यह मनुष्य-चोला केवल परदे का काम कर रहा है और उधर प्रभु-भक्त उस परमपिता परमात्मा की जुदाई में जीते जी मरा जा रहा है, इसलिए वह मृत्यु से नहीं घबराता। वह उसको उपकारी जानकर भय नहीं खाता। उसको मृत्यु से प्रेम है। इस शरीर के जाने में प्रेमी का साक्षात्कार है। प्रभु-भक्त मृत्यु का सत्कार करता है। इसका स्वागत करने के लिए चाव से आगे बढ़ता है कि आकर इस चोले के परदे को हटा दे और मुझे स्वतन्त्र कर दे। सांसारिक मनुष्यों के पास तेरा जाना उनके लिए अन्याय है और मेरे पास तेरा आना तेरी कृपा है। ओ प्रसन्न करनेवाली! आ, मरे पास आ! इसलिए सच कहा है—

परमात्मा हर स्थान के अन्दर-बाहर यहाँ-वहाँ हर स्थान पर हर रंग में प्रकाशमान् है, परन्तु यह शरीर राह में रुकावट है। यही कारण है कि संन्यासी मृत्यु से घबराता नहीं। मनुजी महाराज ने ऐसा कहा है कि संन्यासी मृत्यु की इस प्रकार प्रतीक्षा करे कि जैसे कोई मज़दूर (बेगारी) अपने सिर से बोझ को (अपने स्थान पर जाकर) लापरवाही से फेंक देता है और फिर बोझ-भार से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। यह सचाई है—

नज़दीक से नज़दीक है और दूर से है दूरतर,
चश्मे दिल को खोलकर देखो वह आता है नज़र।

परमात्मा, सबका अन्तरात्मा समीप-से-समीप और दूर-से-दूर है। यह कैसी बात है जो समझ में नहीं आती। यहाँ तो बुद्धिमानों की बुद्धि भी मात खाती और आगे जाने से घबराती है। ऐसी बस्तु के लिए जिसमें हठ पाया जाए प्रयत्न करना निष्फल है, क्योंकि यह विचार-ही-विचार है। क्या कभी किसी का इससे मिलाप भी होता है? इस प्रश्न को सुलझाना कठिन है। ऐसा नहीं कि बाहरी कानों से सुना और बाहरी आँखों से वह देखा जाता है, परन्तु मन के चक्षु से देखा जाता है, इसलिए वह बाहरी आँखों से दूर और अन्दर की आँखों के समीप हो जाता है और देखने में नहीं आता है। यह कहा गया है कि परमेश्वर में जगह या समय का भेद नहीं है। कारण यह है कि व्यापक वस्तु समय या स्थान की क़ैद में नहीं आ सकती है और व्याप्य वस्तु व्यापक से कभी भी जुदा नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में फिर वह नज़र क्यों नहीं आता! इसका कारण विचार-भेद है। समय और स्थान का प्रभाव सांसारिक वस्तुओं पर तो हो सकता है, परन्तु उस अविनाशी

परम-पिता परमात्मा पर इन जीजों का अधिकार नहीं है। वह हर समय और हर स्थान पर मौजूद है, परन्तु भेद तो विचारों का है। जब तक विचार पवित्र और उच्च न हों तब तक प्रभु से मिलाप असम्भव है, अतः यह मनुष्य की योग्यता पर निर्भर है कि वह विचारों को उच्च बनाए।

लोगों को परमात्मा के जानने में इस बात की बड़ी रुकावट है कि वह पहले अपने-आपको नहीं पहचानते हैं। जिस मनुष्य को अपने-आपकी होश नहीं, वह परमात्मा को कब पा सकता है। जो स्वयं मार्ग भूला हुआ है वह दूसरों को कब मार्ग दिखा सकता है। कुछ ऐसी भूल हुई पड़ी है, आत्मा पास है, परन्तु हम उसको दूर समझ रहे हैं। मनुष्य इस शरीर के चोले में प्रकाश से अपरिचित हो शरीर के किसी भाग को अपना आपा मान ले। जब ड्राइवर को अपनी ही होश न हो, तो वह गाड़ी को भली प्रकार नहीं चला सकता। यह सत्य है कि जिसको अपना ही ज्ञान न हो वह परमात्मा को कैसे पहचान सकता है, आत्मा के ज्ञान के बाद परमेश्वर के जानने के लिए और कोई यत्न नहीं करना पड़ता— यह सिद्धान्त ठीक है। जो ज्ञान इसके दोष को दूर कर देता है, वह तत्काल ही परमात्मा के प्रकाश से इस को भरपूर कर देता है। जो ज्ञान अपने स्वरूप में बैठा हुआ है ठीक प्रकार से पहले उसको दूर करने का यत्न करना चाहिए। यह प्रभु-भक्तों का कहना ठीक है।

जो नाम से पहिले नष्ट हुआ,
वह 'शेष' में मिलकर शेष हुआ।

यह कैसा वार्त्तालाप है। आनन्द का सच्चा चित्र है। कहने और सुनने में प्रेम का प्रकाश हो जाता है। अपने व्यक्तित्व का, जिसका कभी पतन नहीं होता विकास होता है। कैसा आश्चर्य है, जिसके जान लेने से संसार की हर एक चाल मात है—यह कैसा ऊँचा स्थान है, जिसका न कोई मकान और न कोई निशान है। यह एक ऐसी आनन्दमय अवस्था है जहाँ न कोई दुःख और न कोई गिरावट है। संसारवाले ऐसी बातें सुनकर ही सांसारिक व्यवहार करते हैं, परन्तु इसपर आचरण करते डरते हैं। आजकल ऐसी बातों का बड़ा ही मान है। उसकी दुकान खूब चल रही है जो चालाक है, परन्तु वह चालाकी व्यर्थ है जिसमें अन्त को दुःख है।

इसलिए हे मित्र! यह अवसर बड़ा अच्छा है। ज़रा सावधान होकर खड़ा हो जा, बल और सच्चाई से, पूरे प्रयत्न से। प्रतिबिम्ब के पीछे मत घूम, परन्तु असली वस्तु को ढूँढ़ और फिर झूम-झूमकर मचा दे धूम, इसलिए यह कहना सच है कि फूल बन काँटा न बन, मित्र बन शत्रु न बन। जिसने मृत्यु से पहले अपने को नष्ट कर दिया है उसको फिर कहीं भी कष्ट, दुःख अथवा शोक नहीं होता, वह नाशवान् को नष्ट करके 'शेष'

में जाकर 'शेष' हो गया है।

कर्म और फल के चक्र को तभी रोका जा सकता है जब मनुष्य कर्म तो करे, परन्तु अपने आपको मध्य से हटा दे और अपने सत्कर्म और दूसरों के कुकर्म भूल जाए। यह कार्य कहने में तो सुगम पर आचरण करने में अति कठिन है, परन्तु इसके लिए भी एक उपाय है, यदि मनुष्य को लगन है तो आज नहीं तो कल प्राप्ति होगी ही, कारण यह है कि वह केवल भ्रम से निर्लज्ज हो रहा है भ्रम के दूर होते ही सदा के लिए उससे निर्लज्जता दूर हो जाती है, इसलिए भ्रम का होना न होने के बराबर है—

प्रभु सबमें सभी कुछ है प्रभु में।

मनुष्य में दोष है जो मिलाप नहीं होने देता। परमात्मा के प्रेम से, सत्सङ्ग से, उदारता से जब दोष दूर कर दिया जाता है, तब वियोग स्वयमेव दूर हो जाता है और हृदय की पवित्रता सम्मुख आती है। हृदय आनन्द में डूबकर साक्षात्कार की मंज़िल की ओर जाने को प्रेरित करता है—फिर तबियत पीछे की ओर नहीं हटती। यह अवस्था सबको प्राप्त नहीं होती। जब जन्म-जन्मान्तर का क्रम समाप्त हो जाए, तब अन्तिम जीवन में मनुष्य को ध्यान आता है। फिर—

हो गया आनन्द, दुनिया को रिझाकर क्या करूँ।
दिल प्रकाशित हो तो दीपकराग गाकर क्या करूँ।
जल गया अज्ञान का वह जाल अग्नि-ज्ञान से।
खुद बुझी जाती है अब उसको बुझाकर क्या करूँ॥

यह सब निश्चित ज्ञान से कहा गया है। साक्षात्कार में और ही गुल खिलता है—आगे देखिए।

साक्षात्कार काण्ड

ध्यान उसका दिल में समाता नहीं।
सागर है, गागर में आता नहीं॥

परमात्मा के गुण निराले हैं, गुण-गान करना सम्भव नहीं। वाक्-शक्ति इसकी व्याख्या करने में असफल रही है, परन्तु ज्ञान और बुद्धि इतना बताते हैं कि कोई जगह ऐसी नहीं जो उससे खाली है। कोई उसका इक़रार और कोई इनकार करता है फिर भी इक़रार और इनकार करने में हरेक उसमें विश्वास रखता है। हर प्राणी किसी-न-किसी हालत में उसके आगे प्रार्थी है।

कहीं भी जाओ, पर वह मिलता नहीं, परन्तु विद्वानों की सभा में उसकी कहीं-कहीं चर्चा सुनते हैं। हरएक उसको चाहता है। गरीब हो या अमीर,

महाराजा हो या फ़कीर हर कोई उसका अभिलाषी है, और कोई अद्वितीय मनुष्य केवल तुझसे संयोग करने की इच्छा से घर-बार छोड़ जाता है, और कोई जंगल में जाकर समाधि लगाता है, परन्तु फिर भी तेरा जलवा (प्रकाश) नहीं दीखता।

ओ कृपालु! हर मकान में होता हुआ भी तू बेघर (जिसका अपना कोई घर नहीं) है। हर एक वस्तु में अदृष्ट रूप में रहता है। कुल संसार तुझसे बेखबर परन्तु तू सबसे खबरदार है। इधर-उधर, ऊपर-नीचे वर्त्तमान है पर फिर भी तू ग़ैर-हाज़िर है—यह कैसा आश्चर्य है जिसे समझना कठिन है। कोई रोता है, कोई टकटकी लगाये चुपचाप अपनी सुध खोता है—केवल इसी भेद को समझने के लिए। हे मित्र! मैं पूछता हूँ—कुछ तो बता दे तू समीप है या दूर, *नार है या नूर, तू शोक है या प्रसन्नता। तू किसी को अपने बिछोह में सता रहा है और किसी को प्रेम से थपकियाँ देकर सुला रहा है। किसी पर दुःख ढाना और किसी को कृपा-पात्र बनाना स्पष्ट प्रमाणित कर रहा है कि यह न्याय नहीं, अन्याय है, शासन नहीं क्षमादान है। बस, इस लाचार का रोना-धोना तेरे आगे इतना ही काफ़ी है। व्यर्थ में किसी की परेशानी बढ़ाना ठीक नहीं, जरा परदा उठा दे और अपना जलवा (प्रकाश) दिखा दे। तेरा कुछ बिगड़ेगा नहीं, बेचारे प्रसन्नचित्त और मालामाल हो जाएँगे। इस अवस्था में सनसनी-सी छाई और धीमी-सी आवाज़ आई—

अपनी ज़िद को तू नहीं जब छोड़ता।
उलफ़ते दुनिया से मुँह नहीं मोड़ता॥
अपनी दानाई[1] से मैं हूँ बाकमाल।
अपनी बेसमझी से तू है बाजवाल[2]॥

यह विद्वानों का वचन फिलासफी की बात है कि विवेक-बुद्धि उस ओर झुक जाती है और विवेक-बुद्धिवाली प्रकृति इस रास्ते में रुक जाती है, इसलिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रकृति को ठीक बनाने की कोशिश करे। यह एक ऐसा नेक कार्य है कि संसार का हरेक काम जो नेकी के आधार पर हो, वह सुन्दर व आनन्ददायक हो जाता है और प्रभु-मिलाप सुगम हो जाता है—

नहीं कहता हूँ दुनिया से जुदा हो,
पर हर काम में यादे-खुदा हो।

संसार से वैराग्य उस प्रभु की पहचान का ठीक रास्ता नहीं है। जो यह कहते हैं कि उसके मिलाप के लिए दुनिया छोड़ दो, वे असली भेद नहीं जानते। हाँ यह ठीक है यदि किसी को एकान्त से प्रेम है अथवा किसी

---

* अन्धकार है या प्रकाश। १. बुद्धिमत्ता, २. पतित।

को कम बोलना पसन्द है तो बहुत न बोले—यह अच्छा गुण है। मनुष्य की सोचने और समझने की ताकत को बढ़ाना है—यदि शौक़ हो।

बाह्य संसार का यह शरीर एक छोटा-सा नक़्शा है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो संसार के बनाने में काम आई हो और वह इस शरीर में मौजूद न हो। इसलिए यह कहना ठीक है कि जब तक यह जिस्म साथ दे रहा है दुनिया को छोड़ना कठिन है। देखा जाता है कि जो आजकल जमाने में बैरागी माने जाते हैं, वे दुनियादारों से अच्छा खाते और आराम पाते हैं और उन लोगों को जो कई कठिनाइयों में फँसे हुए भी अपना गुज़ारा करते हैं—उन्हीं को डराकर अपनी पूजा कराते हैं। कैसी विचित्र अवस्था है—यह उस तरीके का एक बहाना है—केवल भारतवर्ष ही इस बात का दीवाना है, इसलिए देख लो इसका बिगड़ा हुआ जमाना है।

बेकायदा दुनिया नहीं छोड़ी जा सकती। पैसा तो पास नहीं पर उसकी इच्छा बनी रहती है। वे धन को क्या छोड़ेंगे जिनसे धन की व्यर्थ इच्छा नहीं छूटती। इसी तरह हर एक को समझ लेना चाहिए। ऐसी बेढंगी चाल से कौन नियत स्थान तक पहुँच सका है। इस प्रकार की ग़लत कोशिश करने से कोई नेक नतीजा निकल सकता है? कदापि नहीं। अधूरे उपदेशों से, प्रभाव-रहित शिक्षाओं से, उपाय-हीन चेष्टा से, स्वार्थता के बहकाने से, व्यर्थ झगड़े उठ जाने से स्पष्ट हो रहा है कि भारतवर्ष आज से नहीं, परन्तु बहुत समय से बिगड़ता ही चला आता है। यह बात सत्य है, कोई किस्सा-कहानी नहीं, जमाना गवाही दे रहा है—कोई बहाना नहीं। कोई भी काम छोटा हो या बड़ा, गुप्त हो या स्पष्ट—तब तक सुचारु रूप में न आएगा, जब तक नेक हाथों में न जाएगा, दुनियावाले बे माल और उसे जोड़नेवाला माला-माल। हाँ, उनमें नेक मनुष्य भी मौजूद है, सबको एक-सा बताना तो पाप-मार्ग में जाना है। कुछ समझदार तो संसार का रुख देखकर उदासीन, चुपचाप बैठे हैं और जो कुछ काम उनकी सहायता से हो रहा है, वे बहुत कम संख्या में हैं। यूँ तो एक मनुष्य भी काफ़ी होता है जो शुद्ध आचरणवाला, झूठ और धोखा-देही से दूर, लोक-सेवा में तत्पर, विद्या-युक्त और कर्तव्य में निपुण हो। ऐसा मनुष्य, यदि प्रभु की कृपा हो, तो आये जिसके सत्य उपदेशों से अज्ञान-रूपी अन्धकार दूर हो जाए। इसीलिए किसी विद्वान् ने ठीक कहा है कि दुनिया से अलहदा होने को मैं तुम्हें नहीं कहता। हाँ, उस काम को कर, फिर किसी से न डर। उस अविनाशी, सर्वगुण-सम्पन्न, प्रकाशवान् सबसे नजदीक और सबसे दूर, निराकार, सर्वशक्तिमान्, सृष्टि के शासक, जिसके बराबर या बढ़कर और कोई नहीं, यह सब उसके साधारण गुण हैं, वह सर्व-व्यापक और निर्लेप, स्वयं कभी दृष्टिगोचर नहीं होता पर सबको देखने में समर्थ है। उसे भूलकर अपना जीवन मत बिता। स्वयं उसपर आचरण कर और दूसरों से करा। जिसे उसकी याद है, वह सदा प्रसन्नचित्त

है। जो उससे दूर है, वह सदा लाचार व मजबूर है। जिसके लगाव में पड़कर मनुष्य उसे भूल जाता है विद्वानों ने उसे दुनिया कहा है और वह पक्का दुनियादार है और दुनिया में रहता हुआ भी (जैसे कमल का पत्ता जल में रहता हुआ उसके प्रभाव से खाली रहता है) उसको नहीं भूलता है, ध्यानपूर्वक वैरागी है। यह सच है संसार बेगाना है, ध्यानपूर्वक देख लो, झूठ नहीं, सत्य है, समय निकल जाता और फिर मनुष्य पछताता है पर हाथ कुछ नहीं आता है। इसलिए किसी ने ठीक कहा है—'हथ कार वल, दिल यार वल'—इसका मतलब यह है कि हर एक काम को नेकी से निभाना और हर समय बुरे कामों से हटाना है, पर भारतवर्ष उससे उल्टा चला। ईश्वर का नाम जपता रहा और एक-दूसरे को ठगता रहा। जिसका परिणाम भी ठीक वैसा ही निकला है।

मनुष्य का दुष्कर्मों की ओर तभी झुकाव होता है जब वह अन्धकार में जाता है। प्रकाश में मनुष्य पाप से परहेज़ करता है। वह सर्व-शक्तिमान् विश्वास और सत्य से भरपूर प्रकाश है। उसकी याद में मनुष्य 'सत्य-मार्ग' को कभी नहीं छोड़ सकता। इसपर आचरण करने से पाप का विचार तक नहीं आता। हृदय में विश्वास हो जाता है, अतः नेक कार्य करने का स्वभाव हो जाता है। इसी भूल से मनुष्य को मौत सताती और उसको जीवन के वास्तविक उद्देश्य से हटाती है, इसलिए उससे दिल लगाओ और उसे कभी मत भुलाओ।

> यदि दिल से कभी उसको न भूले,
> फूलों की तरह फिर तू भी फूले।
> जिसे देखता हूँ मैं आँखें पसार,
> दिलाती तेरी याद है *किरदगार॥

क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता है, मगर बिना कहे रहा भी नहीं जाता है। ज़ुबान में इतनी शक्ति नहीं जो उसका वर्णन कर सके। कोई बुद्धिमान् हो तो इस समस्या को हल करे। आँखों में इतनी दृष्टि नहीं जो उसका दर्शन करें। मन में इतनी शुद्धता नहीं जो बार-बार ध्यान करे। न सन्तोष व शान्ति है, पर हर समय उसी की चर्चा है। कोई कुछ बताता है, दूसरा कुछ सुनता है—फिर किसपर विश्वास करें। यदि ध्यान से देखा जाए तो न कोई बेगाना है न अपना, न कोई कम न अधिक। यह एक भेद है जो कहने में आसान है पर इसपर आचरण करने के लिए हर एक परेशान है। इस अवस्था पर पहुँचते ही अचेतन अवस्था है। एक विशेष प्रकार की खामोशी हो जाती है। मेरे मित्र! यही तो एक §अदा है जो होती अदाδ नहीं। दृढ़ निश्चयवान् मनुष्य सूली पर चढ़ता है पर मुँह पर उफ़ (आह) तक नहीं लाता। ऐ संसार!

---

* ईश्वर। § भाव-भङ्गिमा। δ चुकाना [यही तो एक हावभाव है जो पूरा नहीं होता]।

उधर मत जा, रोएगा। इधर लौट आ, आराम पाएगा। इस रास्ते में आम लोग नहीं जाते हैं। जो जाते हैं फिर लौटकर कहाँ आते हैं? यहाँ चालाकी का काम नहीं, होशियारी का नाम नहीं। यहाँ कहाँ होशियारी, यहाँ तो मिट्टी ही मिलती है और मिलती है खाकसारीδ। यह सब होते हुए भी उसकी अदा लगती है प्यारी-प्यारी। इस अवस्था में एक आवाज़ आई—होश में आ, मत घबरा! आगे बढ़, हरगिज़ न डर! इस उधेड़बुन में कुछ हिम्मत बँधी। वह गुप्त भेद जरा समझ में आया, खुशी से राग गाने लगा, रोतों को हँसाने लगा। कभी गाता है—कहाँ जाऊँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ जाऊँ मैं? भटक-भटककर हार रहा—अब दिल में दर्शन पाऊँ मैं और कभी सुनाता है—मैं तेरा हूँ, तू मुझे दिल से न भूल। इस तान को तोड़कर, प्रेम से हाथ जोड़कर कहने लगा कि अब उसके आगे न किसी प्रकार का झगड़ा ही है और न कोई बखेड़ा ही है। यह ठीक है कि लाजवाबλ बात का जवाब नहीं, पर हाज़िरजवाबχ होते हैं लाजवाब कहीं।

ओ भगवान्! इस बात को तो बता दे कि तूने निराकार होकर इस साकार संसार को कैसे बना दिया? लामकानφ होकर इस आश्चर्यकारी मकान को बनाकर अद्‌भुत प्रकार से कैसे सजा दिया? हम तो समझे बैठे थे कि इस बगीचे में न कोई बाग़वान है, न माली है। जब ध्यान से देखा तो पता लगा कि माली भी है और उसके कर्त्तव्य भी हैं। उस निराकार का पाता वही है जो अपने को मिटाकर बे निशान बनाता है और उस लामकानφ को पाने के लिए अपना मकान छोड़ता है। उसकी याद को स्वयं बहलाता है।

इस प्रकार की बातें बना-सुनाकर बड़े खुश हुए थे कि गुप्त भेद प्रकट हो गया, पर प्रकट होते ही फिर बयान से परे हो गया। नग्न है पर फिर भी परदानशीन कहलाता है। सामने खड़ा है पर दीखता नहीं। किसी तरह यह परदा राह से दूर हो। किसे पूछें? कौन बताएगा? भेद किस तरह हाथ आएगा? क्या आज तक किसी ने जाना ही नहीं अथवा उसके जाननेवाले होंगे कहीं? सुना जाता है जो सुषुप्त अवस्था से चेतना में आता है वह जान-बूझकर अचेतन हो जाता है। यदि कोई उससे इस बात का ज़िक्र करे तो वह चुप हो जाता है। अजब मुश्किल में जान आई, इस झंझट से कैसे छूटें? स्वयं अपनी मुशीबत को बुलाया। पीछे को भूल गये आगे का रास्ता हाथ न आया। इस अवस्था में कौन पथ-प्रदर्शक होगा जो रास्ता बताए और अपनी कृपा से इस उलझन से हमें छुड़ाए? दर्दे-दिल से आँखें आसुओं से भीग रही थीं—कोई नहीं जानता कि किसकी तलाश में यह दुःख उठा रहा है। जिधर देखता है, उसी ओर देखता रह जाता है। कोई कुछ कहे, वह हाँ या ना नहीं करता। जो लोग उसके पास आते हैं भौंचक्के-से रह जाते हैं। कोई चुप

δ विनम्रता। λ जिसका कोई उत्तर न हो। χ प्रत्युत्पन्नमति। φ बिना घरवाला।

और कोई वहाँ ही सो जाते हैं। कोई धीमें कहता है कि इसको किस दुःख ने सता दिया। किसी ने कहा किसी की याद में उसने दुःख को भुला दिया। सूरत भोली-भाली है। हृदय हर प्रकार की लाग-लगावट से खाली है। चाहे वह बैठा लोगों के बीच है पर उसे यह पता नहीं वह कौन है और कहाँ है? किसी ने कहा—देखो! इसकी हर अदा निराली है, दूसरे ने कहा किसी ने इसपर जादू का प्रभाव डाला है। इसी बीच में एक प्रज्ञावान् संन्यासी प्रकट होकर उधर आ निकला और उसकी उस अवस्था को देखकर कहने लगा—

मेरी बात सुन तू उठाकर नज़र,
भटकता क्यूँ फिरता इधर से उधर,
तेरे पास हरदम रहे तेरा प्यारा,
कभी भी वह तुझसे नहीं होता न्यारा॥

संन्यासी की बातों में सत्य (सत्य का प्रभाव) था, दर्दे-दिल के लिए रामबाण औषध थी। बेचैनी दूर हुई, प्रभु के साथ एकता का भाव प्रकट हुआ। विश्वास ने उसे सहारा दिया, सब लोग चलते बने और स्वतन्त्र व प्रसन्नचित्त संन्यासी यह कहता हुआ लोप हो गया—

सिफ़त[1] तेरी क्या करे कोई, नहीं ताकते बयान[2]।
बेनिशाँ[3] बेमिस्ल[4] कहने पर भी तू है बेगुमान॥

शोक! ऐसी बातें कौन सुनाता है। न समझ ही काम करती है, न भेद ही हाथ आता है। जिसने समझा वह तो बता ही नहीं सकता। जिसने जाना, वह समझा ही नहीं सकता। इससे तो यही प्रकट होता है कि जो उसको नहीं जानते, वही तो समझाते हैं और जो उसे जानते हैं, वे चुप रहते हैं।

मेरे मित्र! यह कैसा गोरख धन्धा है, कैसा अजब फन्दा है, जिसका समझना कठिन जान पड़ता है, प्रयत्न करके थक गये। अब तबियत घबराती है, व्याकुलता सताती है, पद-पद पर बेचैनी होती है। राग तो बहुत गाया, पर सब वेसुर और बेताल। चेष्टा व्यर्थ हुई और अन्त में मुँह की खाई। अब कहाँ जाएँ। जान अजब मुश्किल में आई। खबरदार हो तो खबर दे कि इस कठिनता से कैसे छुटकारा होगा। सच है, बिना पथ-प्रदर्शक के इस मार्ग पर चलना कठिन है। जो ज़िद्द से आगे बढ़ते हैं इस रास्ते में उनकी मिट्टी ख़राब होती है। इसलिए पथ-प्रदर्शक तो आवश्यक है पर वह बुद्धिमान् और दूरदर्शी हो, सांसारिक इच्छाओं से परे हो, संसार-हित ही उसका जीवन और मृत्यु हो। वाह! वाह! इस बात को सुनकर कुछ तो सन्तोष हुआ और निश्चय हुआ कि ज्ञानहीनों की बातें सुनने से कुछ लाभ नहीं। उच्च उच्चारणवाले विद्वानों के भाषण में प्रभाव-शक्ति होती है जो संसार के विषैले

---

१. गुण-गान। २. बताने की शक्ति। ३. निराकार। ४. अद्वितीय।

भावों को दूर करने में समर्थ हैं और वह अन्धकार के हटाने में सफल होती है बस उनके पास जाना जिनका न कोई अपना है न बेगाना, जिनका हृदय लाग लगाव से परे है। जो न कभी किसी से डरते हैं और न सत्य कहने में बहाना ही करते हैं।

यह सब ठीक है, पर ऐसे शुद्ध आचरणवालों का मिलना कठिन है। मेरे मित्र! उनकी खोज कर जिनके अन्त:करण में पूरी लगन है। डाँवाडोल चित्तवालों को कहाँ इसका ख्याल है। हिम्मत न हारो, आगे बढ़ो, मञ्ज़िल कड़ी है, प्रेम की बाधा दुनियादारों के रास्ते में खड़ी है। जिस तरह मैदान से दिलावर का कदम कभी पीछे नहीं हटता उसी तरह प्रभु-इच्छुक जिज्ञासु अपने निश्चय पर दृढ़ रहकर कभी दुनियावी प्रेम में नहीं फँसते—कदापि नहीं।

ऐसी अवस्था में पास ही एक कर्त्तव्य-क्षेत्र था मानो कि वह पथ-प्रदर्शक के स्थान पर आगे ही खड़ा था।

वह मस्तानी आवाज़ में कहने लगा—

सुनो बात मेरी खबरदार होकर,
किसी को नहीं मिलता हँसके न रोकर।
तेरे पास हरदम रहे तेरा प्यारा,
हरगिज़ नहीं होता तुझसे वह न्यारा।
मुहब्बत हो—दिल तेरा है उसका घर।
न धन बल वा दुःखों से आवे नज़र॥

हे मित्र! प्रभु से मिलाप न निकट और न दूर है। तनिक प्रेम तो जाग्रत् करो, दिल से नफ़रत को दूर कर दो, मोह और द्वेष को परे करो और शुद्ध हृदय से सबसे मिलो। लोकसेवा में समय बिता और प्रभु के आदेश से कदापि दूर मत हो। एक ही प्रभु के सब प्राणी हैं। इस बात को जानते हुए कभी घमण्ड न करो, धोखा व कपट छोड़कर क्रोध से अपना नाता तोड़ लो। इमानदारी से धन कमा, नेकनीयती से उसे खा और सत्य-मार्ग पै लगा। अच्छी सङ्गत में रहो, बुरी सङ्गत में अपने को बुरा न करो। ऐशो-आराम में वक्त न गँवा। मृत्यु अवश्यम्भावी है, उससे मत डर। यह प्रभु का आदेश है, इसे हृदय से स्मरण करो। प्रसन्नचित्त रहने का स्वभाव बनाओ। अपने सत्कार्यों व धर्मनीति से औरों को प्रसन्न करो। जहाँ तक बने उस प्रभु का यश गा उसे धन्यवाद देना चाहिए। संसार की हर वस्तु नाशवान् है पर उसका नाम अन्त तक रहता है। संसार भी नाशवान् है पर उसमें एक गुण अद्भुत है। वह यह कि मनुष्य यदि विचारशील हो तो मृत्यु पर विजय पाता है, फिर न जीता है न मरता है, अर्थात् अमर हो जाता है। बिन्दु का नदी में गिरना नाश और फिर नदी में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होना जीवन है। यह उधर को जाता है और वह इधर से आता है, एक मध्य में दोनों उपस्थित हैं, परन्तु इस भेद को वही जानते हैं जो बुद्धिमान् और योग्य हैं। इस सीढ़ी

पर चलने के लिए अन्तःकरण की शुद्धि की आवश्यकता है। वही आगे बढ़ता है जो बाहर की चमक-दमक से दूर रहता है।

प्रातःकाल उठकर उस प्रभु को याद करो। इस शुभ कर्म से सदैव चित्त प्रसन्न होकर दिल से दुई का परदा उठता है। प्रभु के समीप होने से ही उसके दर्शन होंगे और फिर सबसे प्रेम-भाव होगा। उस दशा में न कोई अपना है न बेगाना। यह एक गूढ़ रहस्य है।

इससे आगे बल नहीं है और न ही कोई उपाय है। जो इस भेद को समझे उसी का इन सांसारिक झगड़ों से छुटकारा होता है।

मान लिया कि ईश्वर-भक्ति की महिमा कहने सुनने से बाहिर है। तब भी कुछ बखान होना ही चाहिए। इससे प्रसन्नता होती है, यह सब जानते ही हैं।

प्रभु एक है, इसके समान कोई नहीं है। मनुष्य को नाशवान् कहते हैं और मनुष्य आकारवाला भी है, परन्तु वह निराकार, अजर-अमर और अनादिकाल से है। उसने मनुष्य को बनाया, मनुष्यत्व दिया, सत्य मार्ग समझाया और कहा—हठ किसी से न करना, मत परस्पर लड़ना, सदैव बुरे काम से डरना।

कई बार लोग कहते हैं—क्या अजीब बात है, मनुष्य तो जिसे देखा सुना जाता है, कारोबार में रोज आता है वह तो नाशवान है और जिसको न कभी देखा और न सुना वह सदैव एकरस अमर है। वह बाहर से किसी प्रकार भी नहीं जाना जाता और नहीं पहचाना जाता है। कोई इसके बराबर हो तो समझा जाए। यदि इसमें रूप आदि गुण हों तो ध्यान में लाया जाए। वह इन सब बातों से अलग है यही तो इसमें विशेष गुण हैं। वह हार और जीत से अलग है। आधार के प्रमाणित हो जाने से ऊपर और मध्य दोनों प्रमाणित हो जाते हैं, इसलिए ईश्वर तो सर्व-सृष्टि का आधार शक्तिमान् और अमर है। सारी सृष्टि का प्रबन्ध करना, नाशवान् को नष्ट और प्राचीन को स्थापित रखना उसके ही नियम अनुकूल है। वह सदैव जाग्रदवस्था में सावधान, एकरस रहता है। संसार के मनुष्य उसकी ही पूजा करते हैं, उसको सर्वव्यापक जानकर बुरे कर्मों का ध्यान और उनके करने से डरते हैं। विद्वान् लोगों ने उसको ही अपना प्यारा और सहारा माना है। उसकी उपासना करना ही मोक्ष को पाना है। योग्य मनुष्यों ने जीवन और मृत्यु से स्वतन्त्र हो जाने का उपाय उसकी याद को ही बताया है और स्वयं उसको ठीक समझकर दूसरों को समझाया है। परमात्मा के गुणों का ख्याल आते ही मनुष्य का पग सत्य मार्ग की ओर हो जाता है। यह कार्य मनुष्य को नेक बनाने में बड़ी सहायता पहुँचाता है और सबकी भलाई करने का ध्यान सामने आता है। सदैव उसकी याद से अपने दिल को सदा प्रसन्न करो, उसको भूलकर भी कभी मत भूलो।

ईश्वर कैसा है, कहाँ है और किस प्रकार का है? इस समस्या के

असली रूप को कोई नहीं जानता, परन्तु हर एक मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार उसे समझने की चेष्टा करता है। किसी ने उसे सर्व-व्यापक बतलाया, परन्तु फिर भी परिश्रम करने पर स्वयं उसका पता न पाया। किसी जगह जाओ, कहीं चक्कर लगाओ, उसकी बातें सुनो और सुनाओ—परन्तु उसका भेद हाथ नहीं आता है, सुननेवालों ने क्या सुना, बतानेवालों ने क्या बताया, ठीक दिल में नहीं समाता है। किसी ने उसको एकदेश व्यापी माना है, परन्तु वह देश अथवा स्थान कैसा है, कहाँ पर है इसे कोई न जान सका। आज तक उसका पार किसी ने न पाया, किसी ने भगवान् की मूर्त्ति बनाकर बड़ी धूमधाम से मन्दिर में बैठाया है, घण्टा-घड़ियाल बजाकर सुलाना, जगाना, नहलाना, भोग लगाना उसको ईश्वर मानकर प्रेम से सिर को झुकाना, यह सब-कुछ देखने में आता है पर इन सब बातों से मनुष्य का विचार साफ़ न होकर उलझता ही जाता है। कोई इसी के वैराग्य में संसार को छोड़ जाता है और फिर कुछ समय के बाद संसार के अधीन नज़र आता है। कोई योगियों की खोज में फिर रहा है और कोई फ़कीरों की सङ्गत में घिर रहा है। कोई अपने-आपको 'अहं ब्रह्म' कहता है, परन्तु उसकी शक्ति को अपने में नहीं देख पाता। कोई किसी स्थान को पवित्र जानकर उस जगह जाना पुण्य समझता है और कोई नदी में गोता लगाने को शुभ कर्म मानता है, कोई ईश्वर को मिलने के लिए दान करता है और कोई गुरु-मन्त्र लेकर संसार-सागर से तरना चाहता है। इस प्रकार झंझटों में पड़कर बिना मतलब की बात-चीत को बढ़ाकर ईश्वर-भक्ति का सच्चा उपाय हाथ से जाता रहा। कई प्रकार के सम्प्रदाय हो गये, लोग ईश्वर को भूलकर मनुष्यों के पुजारी हो गये। एक ने दूसरे पर आघात किया, इसलिए सबके सब ईश्वर की पहचान से दूर हो गये, परन्तु जो लोग इन सम्प्रदायों के झगड़ों से दूर हो गये उन सबकी एक राय है। वे सब बुद्धिमान् हैं और सब इस रास्ते के दीवाने हैं। जो सचाई को जानकर मस्त हैं, वे बुद्धिमान् और पूर्ण-विश्वासी हैं, बाकी सब अन्धविश्वासी हैं और मोह की दुनिया में फँसे हुए हैं।

जिस समय जीव को अपनी योग्यता का ज्ञान हो जाता है उसी समय शान्ति प्राप्त होती है। जन्म-मरण और सांसारिक सुख-दुःख की प्रदर्शनी से दूर होकर आत्मस्वरूप का उदय हो जाता है । दुःख का परदा दूर हो जाता है और अन्तःकरण शुद्ध होता है। अज्ञान का समूह ज्ञान-अग्नि से जल गया जैसे कोई अग्नि में गिरते ही प्रकाश की अवस्था में बदल गया। जिधर देखता हूँ उसकी महिमा चारों ओर नज़र आती है। इस अवस्था में न किसी से मित्रता है न वैर, जङ्गल और शहर सब एक-समान हैं। यहाँ हर प्रकार से प्रसन्नता है—न कोई सताता है, न सताया जाता है। कैसा अच्छा भक्ति-मार्ग है, जिसके सुनने-सुनाने में भी आनन्द आता है। क्या अजीब बात है जिसके दर्शन के लिए मारे-मारे फिरते हैं कहीं-कहीं तो वह सामने खड़ा

दीखता है फिर पता नहीं चलता कि वह किस ओर अदृश्य हो गया। दिल में ही उसका ज्ञान उदय हुआ, दिल में ही इसका ध्यान उत्पन्न हुआ फिर दिल ने ही उससे एक प्रश्न किया—हे ईश्वर! आपने मुझे अपना भेद बताया जोकि कठिनता से मिलता है। अब फिर कठिनाई में फँसाना चाहते हैं। अब आप बताएँ—कहाँ जाओगे, अपने-आपको कहाँ छिपाओगे प्रभो! आप सामने खड़े हँसते हो, लोप होना चाहते हो, पर कहाँ जाओगे, कोई छिपने को जगह नहीं है। यह साक्षात्कार तेरे सच्चे भक्त की भक्ति का फल है।

***

वेद प्रकाशन के सम्बन्ध में

हमारी हार्दिक इच्छा थी कि दिसम्बर में हम चारों वेद [मूलमात्र] पाठकों के हाथों में पहुँचा दें, परन्तु इस इच्छा की पूर्ति में समय लगेगा। वेद का कम्पोजिङ्ग ही कठिन काम है, फिर उसमें स्वर लगाना और भी कठिन है। दो व्यक्ति एक दिन में आठ पृष्ठों पर स्वर लगा पाते हैं। काम वैसे ही बहुत कठिन था, एक और उत्तरदायित्व सिर पर ले लिया। पहले केवल स्वामीजी (श्री स्वामी जगदीश्वरानन्दजी) ही प्रूफ़ पढ़ते थे, परन्तु अब चार अन्य विद्वानों से पढ़वाने का भी निर्णय ले लिया है। वेद-जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बार-बार नहीं छपता है। मेरी भी और स्वामीजी की भी यह इच्छा है कि अब तक जितने संस्करण छपे हैं, यह उन सभी से उत्कृष्ट, भव्य और दिव्य हो। पाठक भी देखकर भाव-विभोर हो उठें। विद्वान् भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करें।

हमारा पूरा प्रयत्न होगा कि ग्रन्थ में आदि से अन्त तक एक भी अशुद्धि न हो। मुद्रण भी नयनाभिराम हो, अतः पाठक कुछ प्रतीक्षा करें। ऋग्वेद और यजुर्वेद कम्पोज हो चुके हैं। स्वर लग रहे हैं। दिसम्बर तक चारों वेदों के कम्पोज हो जाने की आशा है। प्रूफ़ रीडिंग हो रही है। एक-एक विद्वान् दो-दो मास तो लगा ही देगा। प्रूफ़ की दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ निकालकर विद्वानों की सेवा में एक साथ भेजी जाएँगी, जिससे कार्य शीघ्र सम्पन्न हो सके।

आशा है, पाठक धैर्य रक्खेंगे।

आपको 'वेदप्रकाश' के माध्यम से प्रगति की निरन्तर सूचना मिलती रहेगी।

—अजय कुमार

न्यायदर्शनम् भाष्य जो शास्त्र हमें तर्क-वितर्क का ज्ञान देता है, हमारे भीतर की बन्द आँखों को खोलकर हमें तर्क करने का ज्ञान और साइंस प्रदान करता है, उसी का नाम न्यायशास्त्र है और वही न्यायदर्शन है। रूखे व दुरूह कहे जानेवाले इस विषय को लेखक ने अत्यन्त सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। **मूल्य : रु० १५०-००**

वैशेषिकदर्शनम् भाष्य सृष्टि-रचना में जो सूक्ष्म मूल तत्त्व हैं उनका विज्ञानपरक विवेचन इस दर्शन में किया गया है। इसमें पदार्थों के धर्म की व्याख्या है। यह ज्ञान भी सभी के लिए उपयोगी और अनिवार्य है।

मूल्य : रु० १२५-००

सांख्यदर्शनम् भाष्य लम्बे समय तक यह कुतर्क चलता रहा है कि 'सांख्यदर्शन' अनीश्वरवादी है। इस भ्रान्ति का उन्मूलन करने के लिए आचार्य उदयवीर जी को तत्सम्बन्धी विपुल साहित्य, इतिहास, वाग्जाल और विविध भाष्यों का अध्ययन-चिन्तन-मनन करके इस सत्य को उघाड़ना पड़ा है कि सांख्यदर्शन अन्य दर्शनशास्त्रों का ही पूरक है। विषय गूढ़ है, किन्तु सरलता से समझा जा सकता है। **मूल्य : रु० १००-००**

योगदर्शनम् भाष्य योग का सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्षरूप परमानन्द की प्राप्ति। मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य भी 'ब्रह्म का साक्षात्कार' है। 'योगदर्शन' इसी लक्ष्य-प्राप्ति का साधन है। योग-सूत्रों की सर्वाङ्ग एवं सम्पूर्ण व्याख्या जिस रोचक शैली में आचार्य उदयवीर जी ने की है, उसे विद्वज्जनों और जनसाधारण ने मुक्तकण्ठ से सराहा है। **मूल्य : रु० १००.००**

वेदान्तदर्शनम् भाष्य (ब्रह्मसूत्र) महर्षि वेदव्यास बादरायण ने ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना की थी। लेखक ने ब्रह्मसूत्र पर अपना निष्पक्ष व निर्भ्रान्त विद्योदयभाष्य प्रस्तुत करके हमारे वैदिक ज्ञान-विज्ञान को पुनः सार्वभौम और सार्वशिरोमणि कर दिखाया। **मूल्य : रु० १८०-००**

मीमांसादर्शनम् भाष्य मध्यकाल में कुछ ऐसी विडम्बना हुई कि विरोधी मतों की देखादेखी वैदिक वाक्यों के अर्थों में भी अनर्थ होने लगा। यज्ञों में भी पशु और नर बलि मान्य हो गई। आचार्य उदयवीर जी अन्य दर्शनों के भाष्य के बाद, जीवन के अंतिम वर्षों में मीमांसा-दर्शन के तीन ही अध्यायों का भाष्य करके दिवंगत हो गए। इस भाष्य की विशेषता यह है कि विद्वानों की दृष्टि में यह शास्त्र-सम्मत भी है और विज्ञानपरक भी। यज्ञों में पशु हिंसा की शंकाओं का सहज समाधान करके विद्वान् भाष्यकार ने पाठकों और शोधकर्ताओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। **मूल्य : रु० ३५०-००**

सांख्यदर्शन का इतिहास सांख्यदर्शन के इतिहास पर व्याप्त भ्रान्तियों को मिटाने के लिए लेखक ने इसके इतिहास का मन्थन व मनन किया। इतिहास और दर्शन का यह अनूठा संगम है। कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। **मूल्य : रु० २५०-००**

सांख्यसिद्धान्त सांख्यसिद्धान्त में दो प्रकार के मूल तत्त्वों का विवेचन है। एक है 'पुरुष' और दूसरा 'प्रकृति'। लेखक ने वर्षों के गहन अनुशीलन व शोध के पश्चात् तटस्थ और निष्पक्ष भाव से विभिन्न मन्तव्यों का तुलनात्मक विवेचन करके इस ग्रन्थ की रचना की है। **मूल्य : रु० २००-००**

वेदान्तदर्शन का इतिहास इतिहास चाहे राजा-महाराजाओं का हो अथवा दार्शनिक साहित्य का, उसकी उपयोगिता इसी में है कि वह सत्य का बोध कराए। कुछ वर्ष पहले तक यह कहना कठिन था कि ब्रह्मसूत्रों के रचयिता व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे या दो भिन्न-भिन्न इसी प्रकार अचार्य शंकर के काल को कोई सुनिश्चित नहीं कर पाया था। इस सन्दर्भ में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी ने जिस सहजता से भ्रान्तियों का उन्मूलन किया है, उसकी विद्वान पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। **मूल्य : रु० २००-००**

प्राचीन सांख्य-सन्दर्भ सांख्यशास्त्र की अनेक आचार्यों ने विवेचना की। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल में किन-किन आचार्यों ने इसके भाष्य किये, यह सब अंधकार के गर्त में रहा। लेखक ने यत्र-तत्र बिखरे इतिहास की कड़ियाँ जोड़ीं तथा सांख्यशास्त्र के व्याख्यापरक ग्रन्थों को समझने और ऐतिहासिक दृष्टि से इस 'दर्शन' के क्रमिक विकास को जानने के लिए उपयोगी बनाया। **मूल्य : रु० १००-००**

वीर तरङ्गिणी श्री उदयवीर शास्त्री को पाठक प्रायः योग, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों के प्रकाण्ड पंडित के रूप में ही जानते हैं। वे कवि और कथाकार भी थे, आलोचक और पुरा-मर्मज्ञ भी—यह पता चलता है इस विविधा से। **मूल्य : रु० २५०-००**

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने ज़ंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२०-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामवेद शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	प्रेस में

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वेद-मीमांसा	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु	६६०-००
चयनिका	क्षितीश वेदालंकार	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	पं० रामनाथ वेदालंकार	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	डॉ० भवानीलाल भारतीय	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१५-००
धर्म का स्वरूप	डॉ० प्रशान्त वेदालंकार	५०-००
ऋषि बोध कथा	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	१०-००
वैदिक धर्म	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२०-००
सन्ध्या रहस्य	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	प्रो० रामविचार एम० ए०	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	ओम्प्रकाश त्यागी	६-००
पूर्व और पश्चिम	नित्यानन्द पटेल	३५-००
सन्ध्या विनय	नित्यानन्द पटेल	६-००
गीत सागर	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	२५-००
वेद भगवान बोले	पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	पं० नरेन्द्र	१५-००
आचार्य शंकर का काल	आ० उदयवीर शास्त्री	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	पं० वीरसेन वेदश्रमी	४५-००
प्राणायाम विधि	महात्मा नारायण स्वामी	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	कवि कस्तूरचन्द	३-००
जीवात्मा	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	प्रेस में
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	प्रेस में
विवाह और विवाहित जीवन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८-००
जीवन गीत	धर्मजित् जिज्ञासु	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	महर्षि दयानन्द	३-००
व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	पं० सत्यपाल विद्यालंकार	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	१-००	Vedic Prayer	3-00
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००		

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
गुरु विरजानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	त्रिलोकचन्द विशारद	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	त्रिलोकचन्द विशारद	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	सत्यभूषण वेदालंकार	३-००
महात्मा हंसराज	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	स्वामी जगदीश्वरानन्द	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	स्वामी जगदीश्वरानन्द	९००
स्वर्ण पथ	स्वामी जगीदश्वरानन्द	१२००
आचार्य गौरव	ब्र० नन्दकिशोर	५००
त्यागमयी देवियाँ	महात्मा आनन्द स्वामी	८००
हमारे बालनायक	सुनील शर्मा	८००
देश के दुलारे	सुनील शर्मा	८००
हमारे कर्णधार	सुनील शर्मा	८००
आदर्श महिलाएँ	नीरू शर्मा	८००
कथा पच्चीसी	स्वामी दर्शनानन्द	८००
बाल शिक्षा	स्वामी दर्शनानन्द	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	३००
दयानन्द चित्रावली	पं० रामगोपाल विद्यालंकार	२५००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे : लेखक—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। शंकराचार्य मूलतः वेदान्ती' या अद्वैतवादी नहीं थे। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इसका संकेत मिलता है। स्वामीजी ने इस मान्यता की पुष्टि में शंकराचार्य के ग्रन्थों से अनेक प्रमाण उद्धृत किए हैं। **मूल्य : रु० ४०-००**

आर्यसमाज के बीस बलिदानी : लेखक—डॉ० भवानीलाल भारतीय। आर्यसमाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ जानेवाले उन बीस आर्यों की संक्षिप्त बालोपयोगी जीवनियाँ, जिन्हें पढ़कर बच्चों, नवसाक्षरों तथा प्रौढ़ों को सत्प्रेरणा मिलेगी। पुरस्कार, उपहार देने योग्य। **मूल्य : रु० १५-००**

आचार्य गौरव : लेखक—ब्र० नन्दकिशोर। आचार्य-शिष्य संबंधों की मार्मिक झांकी प्रस्तुत की गई है। जहाँ शिष्यों को कर्त्तव्य-बोध कराया गया है, वहीं आचार्यों की राष्ट्र-निर्माण की दिशा भी दर्शायी गई है। **मूल्य : रु० ५-००**

महात्मा नारायण स्वामी : लेखक—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। महात्माजी का जीवन बहुत घटनापूर्ण है। उनके पास कोई ऊँची डिग्री नहीं थी, न ही वे धनवान् थे, परन्तु अपने चरित के कारण वे ऊँचे विचारक, सुधारक, महात्मा, योगी, लेखक व पूज्य नेता बन गए। इस स्वनिर्मित जीवन चरित से युवक-युवतियाँ बहुत कुछ सीख सकते हैं। **मूल्य : रु० ५-५०**

बहुत दिनों बाद प्रकाशित पुस्तकें

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार : लेखक—पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार। इस ग्रन्थ में वैदिक विचारधारा को विज्ञान की कसौटी पर परखने का प्रयत्न किया गया है, ताकि हमारी नई पीढ़ी जिन मान्यताओं को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ती जा रही है, उन पर नई दृष्टि से सोचें। **मूल्य : रु० १५०-००**

षड्दर्शनम् : लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती। वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है। **मूल्य : रु० १५०-००**

सामाजिक पद्धतियाँ : लेखक—महाशय मदनजित आर्य, सन्ध्या, हवन-मंत्र, यज्ञोपवीत, प्रथम वस्त्र-परिधान, जन्म-दिवस, विवाह पद्धति, सगाई पद्धति, सेहरा बन्दी, शैंत, मिलनी, गार्हपत्याग्नि पद्धति, व्यापार-सूत्र, दुकान मुहूर्त, अन्त्येष्टि क्रिया आदि आवश्यक सामाजिक पद्धतियों के संग्रह। **मूल्य : रु० १२-००**

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

आर्य सूक्ति सुधा : लेखक—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। आर्य सामाजिक साहित्य के इतिहास में प्रथम बार ही आर्यसमाज के इतने विद्वानों, महात्माओं व संन्यासियों की वैदिक सिद्धान्तों पर सूक्तियाँ संग्रहीत करके छापा जा रहा है। वैदिक धर्मियों के लिए यह पुस्तक ज्ञानकोश है।

दीप्ति : लेखक—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। विवादास्पद विषयों का विवेचन। स्वामी जी के कुछ महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह।

वैदिक ज्ञानधारा : संकलनकर्त्ता—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। आर्यसमाज की पहली व दूसरी पीढ़ी के संन्यासी, महात्मा, नेता व विद्वान् सभी उच्च कोटि के गवेषक, लेखक व वक्ता थे, इन्हीं पुराने आर्य लेखकों, विचारकों के भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे गए महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह।

Bodh Kathayan : Mahatma Anand Swami : Translation of Swamiji's book 'बोध कथाएँ'।

How to Lead Life : Mahatma Anand Swami, Translation of Swamijis book 'दुनिया में रहना किस तरह'?

पुस्तक परिचय

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड) (सं० भवानीलाल भारतीय) इसमें संकलित हैं उनके समस्त ग्रन्थ, प्रमुख भाषण, आत्मकथा तथा नवलिखित सचित्र जीवन-चरित। **प्रथम खण्ड** स्वामी जी की आत्मकथा, **द्वितीय खण्ड** धर्मोपदेश, **तृतीय खण्ड** आदिम सत्यार्थप्रकाश व आर्यसमाज के सिद्धान्त, आर्यों के नित्य कर्म, सन्ध्या-विधि, ईसाई मत और आर्य समाज, छुआछूत, **चतुर्थ खण्ड** पं० लेखराम (जीवनी), बन्दीगृह के विचित्र अनुभव, **पंचम खण्ड** इनसाइड कांग्रेस (लेखों का संग्रह), हिन्दू संगठन **षष्ठ खण्ड** पारसी मत और वैदिक मत, वेद और आर्यसमाज, मुक्ति सोपान, मातृभाषा का उद्धार, रामायण रहस्य कथा, गोपाल कृष्ण गोखले से पत्र-व्यवहार, **सप्तम खण्ड** गोपीनाथ पर मुकद्दमा (एक ऐतिहासिक मुकद्दमा), **अष्टम व नवम खण्ड** कुलियात संन्यासी के लेखों का हिन्दी अनुवाद, **दशम खण्ड** आर्यसमाज, उसके संस्थापक तथा उसके शत्रु और पटियाला अभियोग, **एकादश खण्ड** स्वामीजी का विस्तृत सचित्र जीवन चरित डॉ० भवानीलाल भारतीय की कलम से।

शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड) : पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय सं० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती। वेदार्थ और कर्मकाण्ड का अत्यन्त प्रसिद्ध एवं अति प्राचीन ग्रन्थ, मूल संस्कृत तथा हिन्दी अनुवाद सहित। मूल संस्कृत-भाग जर्मनी के विद्वान् अल्बेर्त वेबेर द्वारा १८४९ में सम्पादित एवं स्वर-सहित प्रकाशित पुस्तक से लिया गया।

चयनिका : क्षितीश वेदालंकार। पुस्तक में ऋषि दयानन्द, आर्यसमाज, ईश्वर, वेद, सत्यार्थप्रकाश, शिक्षा, संस्कृति, धर्म, समाज, राजनीति, आर्य महापुरुष आदि चुने हुए लेखों का संग्रह है।

वैदिक मधुवृष्टि : डॉ० रामनाथ वेदालंकार। पुस्तक में परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव, उपासना, माधुर्य, मानव-शरीर के महत्त्व, आचार्य-शिष्य, राष्ट्रोन्नति, शिक्षाशास्त्र, यज्ञ, चिकित्सा, योगसिद्धि, वैदिक काव्यालंकार, मानवता आदि विषयों पर निबन्ध हैं।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल : आचार्य प्रियव्रत वेदावाचस्पति। इस पुस्तक में वेद, ईश्वर, सृष्टि, प्रलय, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, राष्ट्रनिर्माण आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वेद-मन्त्रों और सूक्तों का संग्रह है।

वेद मीमांसा : स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। यह वेद के अध्ययन-अनुसंधान की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। इसमें पाश्चात्य एवं तदनुयायी भारतीय वेदालोचक विद्वानों के मतों की तीव्र आलोचना करते हुए सही भारतीय मत का प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है।

सृष्टि विज्ञान और विकासवाद : स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। पुस्तक में जीवन की उत्पत्ति, गर्भशास्त्र, लुप्तजन्तु शास्त्र, योग्यतम की विजय, श्रमिक विकास, भूगर्भशास्त्र, ज्ञान की उत्पत्ति और उसका संक्रमण आदि विषयों पर वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाण-पुरस्सर व तर्क-प्रतिष्ठित विवेचन हुआ है।

आर्यसमाज विषयक साहित्यिक परिचय : डॉ० भवानीलाल भारतीय। आर्यसमाज के इतिहास, इसके नियम, उपनियम, इसकी परिचयात्मक जानकारी तथा इसके सिद्धान्तों एवं कार्यों से संबंधित ग्रन्थों की परिपूर्ण सूची प्रस्तुत करने का प्रयास है।

वैदिक धर्म : वे०शा० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ। वैदिक धर्म के सभी मुख्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक वेदमन्त्र दे दिए गए हैं। ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, सृष्टि के आरम्भ में युवाओं की उत्पत्ति, मुक्ति से पुनरावृत्ति आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है।

वेद भगवान् बोले : पं० विष्णुदयाल (मॉरीशस) वेद वैदिक संस्कृति का मूलाधार हैं। संसार में जितना ज्ञान-विज्ञान, विधाएँ और कलाएँ हैं, उन सबका आदि-स्रोत वेद है। मॉरीशसवासी पं० विष्णुदयाल के वेदों पर लिखे गये महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह।

हमारा १९९५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेद-प्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित संख्या में ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे। यह मार्च ९५ में पाठकों को मिलेगा।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाज आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

इस धनुष से कैसे बाण छोड़ेगा ?

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्॥

अथर्व० १८।१।६

अर्थ—(ऋतस्य) सत्य का (गाः) गान करने वाले (शिमीवतः) कर्मों का उपदेश करने वाले (भामिनः) प्रकाश फैलाने वाले (दुर्हृणायून्) दुष्ट-व्यवहारों पर क्रोध करने वाले (मयोभून्) सुख फैलाने वाले (हृत्स्वसः) दूसरों के हृदयों में जाकर लगने वाले (इषून्) वाणों को (अद्य) आज (धुरि) कर्त्तव्य-भार उठाने के समय (आसन्) मुख-रूप धनुष पर (कः) कौन (युङ्क्ते) चढ़ाता है ? (यः) जो (एषां) इन बाणों की (भृत्याम्) भरण-विधि को (ऋणधत्) वृद्धि देता है (सः) वही (जीवात्) जीवन प्राप्त करता है।

हमारा मुख एक प्रकार का धनुष है जिससे वचन-बाण निकला करते हैं। साधारण तौर पर इन वचन-बाणों से असत्य की गूंज निकला करती है। इनके कारण संसार में दुःख बढ़ता है।

वेद का आदेश है कि मनुष्य ! सांसारिक कर्त्तव्य-भार उठाने के समय तुझे अपने मुख-धनुष से वचन-बाण चलाने पड़ेंगे, तू उन्हें शौक से चलाना। पर ध्यान रखना कि वे वचन-बाण सत्य का गान करने वाले हों—वे अन्धकार का नाश करने वाले हों—वे अन्याय, अधर्म और दुष्ट व्यवहार से समझौता न करें प्रत्युत उसकी जड़ काटनेवाले हों। उनकी वजह से संसार में सुख की धाराएँ बह निकलें।

मनुष्य ! यदि तू ऐसे बाण चलाना सीख गया तो संसार में वास्तविक जीवन आएगा।

—'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' से

बोध-कथा

सवाल एक बादशाह के : जवाब एक बालक के

बादशाह अकबर अपने समय के एक सफल प्रशासक थे। वह अपनी जनता के सुख-दुःख का सदा ख्याल रखते थे। उनके राजदरबार में अपने समय के नौ श्रेष्ठ गुणी कलावन्त हर तरह की उलझन-समस्या-सवाल का जवाब देने के लिए तैयार रहते थे। एक दिन बादशाह अकबर ने अपनी एक निजी उलझन के बारे में कहा, "इस उलझन से मैं बहुत परेशान हो उठा हूं। मेरे दो सवाल हैं, उम्मीद है आप उनके दो जवाब देंगे। मेरा पहला सवाल यह है कि सभी मजहबों की किताबों में लिखा है—खुदा या परमात्मा ने यह दुनिया बनाई है, वही उसे चलाता है। मेरा पहला सवाल उसी खुदा के बारे में है। वह खुदा दीखता क्यों नही है ? मेरा दूसरा सवाल यह है कि यह खुदा भले-बुरे का फैसला कैसे करता है ? बादशाह ने इन दोनों सवालों का तुरन्त जवाव देने के लिए कहा। सब की नजर बीरबल पर पड़ीं। बादशाह ने बीरबल से कहा—वह इस गुत्थी को सुलझाए। हाजिर जवाब बीरबल ने भी सवालों का जवाब देने के लिए कुछ समय की मोहलत चाही।

इन सवालों के चक्कर में बीरबल घर पर बेचैन बैठे थे कि उनके छोटे बेटे ने कहा—"पिता जी, आपको क्या चिन्ता है, जो इतने परेशान हैं। बीरबल ने बादशाह के दोनों सवाल दोहरा दिए फिर कहा, "बादशाह को इन सवालों का जवाब देना होगा।" उनके बेटे ने कहा—"पिता जी, आप इसकी चिन्ता क्यों करते हैं। इन सवालों का तो मैं ही जवाब दे दूंगा।"

अगले दिन राजा बीरबल के साथ उनका पुत्र भी बादशाह के दरबार में गया और वहां जाकर अपने पिता के साथ खड़ा हो गया। बादशाह ने बालक का परिचय पूछा तो बीरबल ने कहा—"यह मेरा बेटा है, यह आपके सवालों का जवाब दे देगा।"

बादशाह ने कहा—"यह लड़का कुछ बेवकूफ-सा लगता है। वह क्या जवाब देगा।" बालक ने कहा—"मूर्ख मैं नहीं, गुस्ताखी माफ हो तो कहूंगा आप हैं।" बादशाह ने झिड़कते हुए कहा—"बादशाह की शान में तुम्हारे बोल ठीक नहीं हैं।"

बालक ने कहा—"फैसला आप और दरबार करे। मैं आपके भरोसे के मन्त्री का बेटा हूं। पहली बार आपके दरबार में आया हूं। क्या अपने मेहमान का ऐसे ही सत्कार करते हैं ?"

(शेष पृष्ठ १७ पर)

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक १२ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये जुलाई १९९५

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सामान्य जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन—७

ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड की उत्पत्ति और विकास की कहानी :

ऐतरेय उपनिषद् की जबानी

—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

ऐतरेय उपनिषद् में एक कथानक है जब ब्रह्माण्ड और पिण्ड के देवता प्रादुर्भूत हो गए। ब्रह्माण्ड में—पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश प्रादुर्भूत हो गए। पिण्ड में—मुख, आंख, कान, नाक, त्वचा आदि पैदा हो गए। उनके सामने समस्या पैदा हुई कि बिना सहारे के हम कहां उड़ते फिरें, कहां अपना बसेरा या ठिकाना बनाएं। इसी के साथ उनके सामने यह उलझन भी थी कि जब तक पृथिवी आदि भोग्य पदार्थों का कोई भोक्ता नहीं, जब तक मुख, आंख, नाक आदि भोगने वाली शक्तियों का कोई भोग्य नहीं, तब तक वे पैदा होकर भी क्या करें ? ये दिव्य शक्तियां तो पैदा हो गईं, उन सब को अनुभूति हुई कि मानो वे किसी बड़े समुद्र में आ गई हों, उनका कोई ठिकाना नहीं था, उनके सामने उलझन थी—वे कहां रहें, वे अपना समय-दिन-रात कहां बिताए ? जब ये मारे-मारे बेचैन घूम रही थीं तब सृष्टि-रचयिता ने उनके साथ भूख और प्यास को जोड़ दिया। तब वे दिव्य शक्तियां पहले से अधिक बेचैन हो गईं। उन्होंने अपने रचयिता भगवान् से प्रार्थना की—हमें कोई आश्रय-स्थान ठिकाना दीजिए, जहां हम अपना निवास बना कर अन्न खाकर अपनी भूख मिटा सकें।

ताः एताः देवताः सृष्टाः अस्मिन् महति अर्णवे प्रापतन् तं अशनायापिपासाभ्यां अन्ववार्जत् ता एनम् अब्रुवन् आयतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नम् अदाम इति ॥१।२।१॥

इस पर भगवान् ने उन दिव्य शक्तियों के सम्मुख गाय लाकर खड़ी कर दी-पांचों महाभूतों तथा इन्द्रियों रूपी देवताओं ने निवेदन किया-''यह आश्रय स्थल उनके लिए पर्याप्त नहीं है, फिर उनके सामने घोड़ा खड़ा कर दिया । इन दिव्य शक्तियों ने कहा-''यह आश्रय भी हमारे लिए पर्याप्त नहीं ।'' उस स्थिति में भगवान् ने उनके सामने पुरुष को लाकर खड़ा कर दिया और इन्द्रियों से कहा इसमें अपना आश्रय-स्थल बना लो ।'' इन्द्रियों ने कहा-''यह तो बहुत अच्छा बनाया हुआ है, यह रचना बहुत अच्छी है ।'' इन्द्रियों ने एक दूसरे से कहा-''सब अपने-अपने आयतन के अनुसार इसमें प्रविष्ट हो जाओ ।''

ताभ्यः पुरुषम् आनयत् । ता अब्रुवन् सुकृतं वत इति पुरुषः वाव सुकृतम् । ता अब्रवीत् यथा आयतनम् प्रविशत इति ॥१।२।३॥

पुरुष में देवताओं तथा इन्द्रियों ने किस प्रकार आश्रय-स्थल बनाया, इसका वर्णन करते हुए उपनिषत्कार बतलाते हैं-ब्रह्माण्ड पुरुष के मुख से वाणी और वाणी से अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ । अगली ऋचा में कहा गया है- ब्रह्माण्ड पुरुष के मुख की अग्नि पिण्ड-पुरुष के मुख में वाणी होकर प्रविष्ट हो गई । ब्रह्माण्ड-पुरुष की वायु प्राण बन कर पिण्ड पुरुष की नासिकाओं में प्रविष्ट हो गई । ब्रह्माण्ड पुरुष का रचा हुआ आदित्य पिण्ड-पुरुष की आंखों में प्रविष्ट हुआ । ब्रह्माण्ड पुरुष की दिशाएं श्रोत्र बन कर पिण्ड पुरुष के श्रोत्रों में प्रविष्ट हो गईं। ब्रह्माण्ड-पुरुष के लोम पिण्ड-जगत् में औषधियों और वनस्पतियों में प्रविष्ट हो गए । ब्रह्माण्ड-पुरुष का चन्द्रमा पिण्ड-पुरुष का मन बना और मन बन कर हृदय में प्रविष्ट हो गया । मृत्यु अपान बन गई, अपान बन कर पिण्ड-पुरुष की नाभि में प्रविष्ट हो गई। विराट्-पुरुष का जल पिण्ड-पुरुष के शिश्न में वीर्य बनकर प्रविष्ट हो गया । इस छोटे से कथानक द्वारा बतलाया गया है जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है । सृष्टि का विकास कैसे हुआ ? सृष्टि का विकास अव्यक्त-अनघड़ प्रकृति से हुआ यह बात वर्तमान सृष्टि-विज्ञान कहता है, यही मान्यता उपनिषत्कार भी मानते हैं । उपनिषत् की ऋचा देखिए:

अग्निः वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणः भूत्वा नासिके प्राविशत् । आदित्यः चक्षुः भूत्वा अक्षिणी प्राविशत् दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशत् । औषधिः वनस्पतयः लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन् चन्द्रमा मनः भूत्वा हृदयं प्राविशत् । मृत्युः अपानः भूत्वा नाभिं प्राविशत् आपः रेतः भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥१।२।४॥

जब सब देवताओं और इन्द्रियों को पुरुष में ठिकाना मिल गया तब भूख और प्यास भी भगवान् के पास गए और अनुरोध करने लगे-''आप हम दोनों का तो ख्याल रखेंगे ।'' तब जगन्नियन्ता भगवान् ने

कहा–"ब्रह्माण्ड और पिण्ड की इन दिव्य शक्तियों के साथ तुम दोनों को भी इनकी सेवा के लिए नियुक्त कर देता हूं । इन देवताओं के साथ तुम्हें भी उनके आनन्द का सहभागी बनाता हूं, । यही कारण है कि जिन-जिन दिव्य शक्तियों को हवि दी जाती है, उन में ये दोनों भी सहभागी होते हैं । ये दोनों कौन हैं **अशनाया पिपासे** भूख-प्यास । जब तक भूख-प्यास न हों, सृष्टि एक चरण आगे नहीं बढ़ सकती । सृष्टि का सारा विकास भूख और प्यास के शमन के लिए ही है । सृष्टि-उत्पत्ति के इस प्रसंग में ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड के लिए अंग-प्रत्यंग में भूख-प्यास को जोड़ दिया गया है ।

सृष्टि का निर्माता कौन ?

ब्रह्माण्ड-पिण्ड की इस विशाल सृष्टि में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि तत्त्वों को देख कर प्रत्येक जिज्ञासु के मन में कुतूहल होता है–इनका निर्माता कौन है ? पृथ्वी के ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों, छोटी-बड़ी खाइयों, हजारों-सैकड़ों मीलों लम्बी जल-धाराओं, सूर्य, चन्द्र, तारे सरीखे नक्षत्रों, कोटि-कोटि भार के अनन्त नक्षत्रों के आधारशून्य भ्रमण को देख कर यह जिज्ञासा स्वभावत: उठती है कि यह सब सृष्टि-जगत् का चक्र कैसे चल रहा है ? क्या ये महाभूत अपने आप सृष्टि को चला रहे हैं या उन्हें संचालित करने वाला, जड़ जगत् को चलाने वाला कौन है ? इस जिज्ञासा का उत्तर ऐतरेय उपनिषद् में दिया गया है–सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व एक परमात्मा ही था, दूसरा कोई पदार्थ गति तक नहीं करता था । परमात्मा ने देखा और आकांक्षा की, इस नाना रूप सृष्टि का सृजन करूँ । सम्बन्धित ऋचा देखिए–

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥

ऐतरेय उपनिषद् १ अध्याय (प्रथम खण्ड)॥१॥

उपनिषत्कार वर्णन करते हैं–सृष्टि का सृजन करने के बाद परमात्मा ने इन लोकों का सृजन किया । किन लोकों का ? द्युलोक से ऊपर जहां तक भी लोक है, वहां से द्युलोक तक का सारा क्षेत्र 'अम्भस-लोक' है । सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र आदि प्रकाश देने वाले तारामण्डल का सारा क्षेत्र 'मरीची-लोक' है, उत्पन्न होने वाले और मरने वाले प्राणियों का लोक 'मर-लोक' है, इन लोकों में पृथ्वी के नीचे जितना भी लोक है वह आप: पाताल-लोक है । उपनिषत्कार की दृष्टि में पृथिवी के ऊपर और नीचे जल ही है । सम्बन्धित मन्त्र यह है–

सइमान्लोकान्असृजत।अम्भ: मरीचीर्मरमापोऽदोम्भ: परेण दिवंद्यौ: प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षंमरीचय:। पृथिवीमरोया अधस्तात्ता आप:॥२॥

जगन्नियन्ता परमात्मा ने देखा कि पृथिवी, द्यु, अन्तरिक्ष इन लोकों का तो निर्माण हो गया, परन्तु यह समस्या अवशिष्ट रह गई कि इन लोकों की परिपालना कैसे होगी ? ये लोक व्यवहार में कैसे आएंगे? इनका उपभोग कैसे होगा और कौन करेगा, इस पर विचार कर उसने सोचा कि लोकपालों की सृष्टि करनी चाहिए। लोकों के पालन के लिए जलों में से अनघड़ विराट् पुरुष का सृजन किया। सृष्टि की रचना करते हुए परमात्मा ने सर्वप्रथम ऐसे विराट्-पुरुष का निर्माण किया, जिसमें ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड–दोनों के मौलिक तत्त्व विद्यमान थे। सृष्टि का चक्र निरन्तर चले, इसके लिए परमात्मा ने तपस्या की। ऐतरेय उपनिषत् के रचयिता ऋषि बतलाते हैं–उस अनघड़ अव्यक्त पुरुषाकार पिण्ड को तपाया गया–वह पुरुषाकार तो था, परन्तु उस ब्रह्माण्ड-पुरुष के मुख, नाक, आंख, कान आदि अंग खुले न थे–पिण्ड को तपाने से वह ऐसे खुल गया, जैसे गर्मी देने से अण्डा खुल जाता है और अन्दर से मुख, नाक, आंख वाला प्राण-धारी जीव प्रादुर्भूत हो जाता है। इस ब्रह्माण्ड-पुरुष के मुख से वाणी गूंजी, ब्रह्माण्ड-पुरुष की वाणी से अग्नि प्रकट हुई। ब्रह्माण्ड-पुरुष की नासिकाएं खुल गईं और इन खुली नासिकाओं से ब्रह्माण्ड-पुरुष के प्राणों का सृजन हुआ, उस के प्राण-प्राणवायु से ओत-प्रोत हो गए, ब्रह्माण्ड-पुरुष की आंखें खुल गई, उसकी आंखों से ब्रह्माण्ड के आदित्य का सृजन हुआ, इन खुले हुए कानों से-पुरुष के कानों का निर्माण हुआ और उसके कानों से ब्रह्माण्ड की दिशाओं का सृजन हुआ, ब्रह्माण्ड पुरुष की त्वचा से उसके लोमों का और उसके लोमों से औषधियों और वनस्पतियों का सृजन हुआ, फलतः ब्रह्माण्ड पुरुष के हृदय का और उसके हृदय से उसके मन का सृजन हुआ। ब्रह्माण्ड पुरुष के मन से चन्द्रमा का सृजन हुआ, फिर ब्रह्माण्ड पुरुष की नाभि खुली और नाभि से अपान खुला। अपान की प्रक्रिया शुरू होने से मृत्यु-चक्र का प्रारम्भ हुआ। अपान से ब्रह्माण्ड पुरुष के शिश्न का छिद्र खुला, उसके खुलने से पुरुष के ओज-वीर्य का सृजन हुआ और उसके सृजन से जलों का सृजन हुआ। वस्तुतः सृष्टि-विकास की प्रक्रिया को शब्दशः समझने की जगह यह उसके विकास की एक दिशा की ओर इंगित करता है। ऐतरेय की मूल ऋचा इस प्रकार है–

तमभ्यपतत्तस्याऽभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डम्। मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः, कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानो अपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतसः आपः ॥१।१।४॥

ऐतरेय उपनिषत् के ऋषि ने सृष्टि उत्पत्ति का विषय प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि जब भगवान् ने पृथिवी, अप्, तेज आदि लोकों और मुख, नाक, आंख, कान आदि लोकपालों–इन्द्रियों आदि की सृष्टि बना दी, उनके साथ भूख-प्यास को भी जोड़ दिया, उस समय उन्हें अनुभूति हुई कि उनके साथ उनके भरण पोषण के लिए अन्न-जल, दाने-पानी की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। इस के पहले अध्याय के तीसरे खण्ड का पहला मन्त्र देखिए–

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्च । अन्नमेभ्यः सृजै इति ॥१॥

भगवान् ने अन्न की सृष्टि के लिए जलों को तपाया, जब जल तपने लगे, उनसे वाष्प-भाप बनी, वाष्प से बादल बने, बादलों से वर्षा हुई और वर्षा से अन्न। फलतः साक्षात् मूर्तिमन्त होकर पौधे-वनस्पतियां उठ खड़ी हुईं–ये पौधे वनस्पतियां ही अन्न के प्रतीक स्वरूप थे। सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

स आपः अभ्यतपत् । ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत । यौ वै सा मूर्त्तिरजायतान्नं वै तत् ॥२॥

यद्यपि भगवान् ने अन्न-वनस्पति उत्पन्न किए तथापि अन्न देवताओं की विपरीत दिशा की ओर चला गया, फलतः दिव्य शक्तियों को अन्न हस्तगत नहीं हुआ। दिव्य शक्तियों ने वाणी से अन्न ग्रहण करने की चेष्टा की, परन्तु केवल बातें बनाने से अनाज नहीं मिल सकता, अपनी ओर अनाज का आह्वान करने से वह अन्न नहीं मिल सकता। **(तत् वाचा अजिघृक्षत् । तत् न अशक्नोत् वाचा ग्रहीतुम्)** वाणी के बाद प्राण ने अन्न पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु यह प्राण के भी हाथ न आया **(तत् प्राणेन अजिघृक्षत् । तत् न अशक्नोत् प्राणेन ग्रहीतुम्)** दिव्य शक्तियां श्वास-प्रश्वास से खींच कर अन्न नहीं ग्रहण कर सकीं। वाणी तथा प्राण के बाद आंख ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु वह आंख के भी नियंन्त्रण में नहीं आया। **(तत् चक्षुषा अजिघृक्षत् । तत् न अशक्नोत् चक्षुषा ग्रहीतुम् ।)** वाणी, प्राण, आंख के बाद श्रोत्र ने भी अन्न को पकड़ने की कोशिश की, परन्तु वह श्रोत्र के भी हाथ न आया **(तत् श्रोत्रेण अजिघृक्षत् तत् न अशक्नोत् श्रोत्रेण ग्रहीतुम् ।)**

दिव्य शक्तियों ने वाणी, प्राण, आंखों, श्रोत्र से अन्न को पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता नहीं मिली, फिर त्वचा ने अन्न को पकड़ना चाहा, परन्तु वह त्वचा के भी हाथ न आया। **(तत् त्वचा अजिघृक्षत् । तत् न अशक्नोत् त्वचा ग्रहीतुम् । स यद् ह एनत् त्वचा अग्रहैष्यत् ।)** जब दिव्य शक्तियों ने वाणी, प्राण, आंख, श्रोत्र और त्वचा

के माध्यम से पकड़ना चाहा और सफलता नहीं मिली, तब मन ने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया, पर चाहने मात्र से यह सम्भव नहीं हुआ। **(तत् मनसा अजिघृक्षत् । तत् न अशक्नोत् मनसा ग्रहीतुम् ।)** जब पुरुष का कोई भी अंग अन्न को पकड़ नहीं सका, न वाणी द्वारा अन्न की पुकार से, न श्वास-प्रश्वास की क्रिया से, न देखने मात्र से, न कानों द्वारा सुनने से, न त्वचा द्वारा छू लेने से, न मन द्वारा इच्छा करने मात्र से अन्न की प्राप्ति सम्भव हुई, तब अपान वायु ने अन्न को पकड़ने की इच्छा की, तब वह उसकी पकड़ में आ गया। अपान वायु अन्न को पकड़ने वाला है, यह अपान वायु ही है जो अन्न के माध्यम से आयु देता है। उपनिषद् की दृष्टि में अपान-वायु अन्नायु है। मूल ऋचा देखिए-

तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत् । स एषोऽन्नस्य ग्रहः । यद्वायु-रन्नायुर्वा एष यद्वायुः ॥ पहला अध्याय, तृतीय खण्ड ॥१०॥

नाभि के नीचे जो वायु गति करती है, वह अपान-वायु है। अनाज पच जाने पर अपान वायु ही उसे गति देकर नीचे ले जाता है। यह अपान जब बिगड़ जाता है, तब प्रायः रोगी पेट की हवा की शिकायत करते हैं, कि पेट से वायु नहीं निकलती, वायु अटक जाती है और व्यक्ति पेट दर्द की शिकायत करता है। इस प्रकार हम ने देखा कि ब्रह्माण्ड के पांच महाभूतों और पांचों इन्द्रियों की भूख-प्यास का शमन करने में अन्न की विशेष महत्ता है, परन्तु यह पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के बाद उपनिषत्कार जिज्ञासु को अध्यात्म के चरम लक्ष्य की ओर प्रेरणा देते हैं, फलतः जीवात्मा ने विचार किया कि यह पुरुष रूपी पिण्ड मेरे बिना वाणी से स्वयं बोलने लगे, मेरे बिना प्राण वायु से स्वतः सांस लेने लगे, मेरे बिना चक्षु-आंखें स्वतः देखने लगें, यदि मेरे बिना कान से स्वतः सुनने लगें, मेरे बिना त्वचा से स्वतः छूने लगें, मेरे बिना मन स्वतः चिन्तन करने लगे और अपान से खाना आदि और बाह्य द्वारों से मल-मूत्र आदि का त्याग होने लगे तब फिर मुझ जीवात्मा के अस्तित्व की क्या महत्ता है, अगर मेरे बिना सब इन्द्रियों का काम चले तो देखा जाए, जीवात्मा ने इन्द्रियों को ललकारा और कहा-मेरे बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता। फलतः देवता और इन्द्रियां समझ गईं कि जीवात्मा के बिना यह पुरुष पिण्ड मिट्टी का निर्जीव पिण्ड ही बना रह जाएगा। मूल ऋचा देखिए-

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं, यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेव विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥११॥

इन्द्रियों की दीन अवस्था देखकर जीवात्मा पुरुष-पिण्ड में प्रविष्ट हो गया। ठीक वैसे ही जैसे ब्रह्माण्ड के विराट् आयतन में अग्नि, वायु, अदित्य आदि प्रविष्ट हुए थे, यह चिन्तन कर कि जीवात्मा के बिना पुरुष-पिण्ड व्यर्थ है, जीवात्मा ने शरीर की सीमा लांघ कर कपाल का भेद कर शरीर के अन्दर प्रवेश किया। जीवात्मा शरीर के इस विदृति-मूर्धा स्थान पर पहुंचता है, तब वह परमानन्द की स्थिति में पहुंचता है, शरीर में जीवात्मा-जागरण, स्वप्न सुषुप्ति की तीन निम्न स्वप्न अवस्थाओं में विचरण करता है। मन्त्र इस प्रकार है–

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिर्नाम द्वाः। तदेतन्नान्दनं तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः, अयम् आवसथः। अयम् आवसथोऽयमावसथः इति ॥१२॥

जब जीवात्मा शरीर में प्रविष्ट हुआ, तब उसने शरीर में पृथिवी, अप्, तेज, वायु आदि भूतों को देखा और जिज्ञासा प्रकट की कि उसके अतिरिक्त शरीर में क्या कोई दूसरा भी बोल रहा है। पुरुष शरीर के अंग-अंग में फैले हुए उस तत्त्व को देख कर जीवात्मा को अनुभूति हुई–उसने देखा ब्रह्म को देख लिया। मूल मन्त्र इस प्रकार है–

स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् किमिहान्यं वावदिषदिति। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमहो ॥१३॥

योगियों की गुप्त भाषा में ब्रह्म-प्रत्यक्ष को इदन्द्र-परमात्मा का साक्षात्कार हो गया, प्रत्यक्ष बात कहने की अपेक्षा रहस्यपूर्ण भाषा में परोक्ष इन्द्र नाम से ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति प्रस्तुत की गई। उपनिषत्कार ने सृष्टि उत्पत्ति का यह अलंकार भरा वर्णन किया है। तीसरे खण्ड का अन्तिम मन्त्र इस प्रकार है–

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः, परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥१४॥

पुरुष की उत्पत्ति

उपनिषत्कार की दृष्टि में यद्यपि नारी में गर्भ का धारण होता है, परन्तु असल में पुरुष के अंग-अंग में तेज-ओज एकत्र होकर वीर्य स्वरूप धारण करता है। फलतः जब पुरुष वह वीर्य नारी में सिंचन करता है, तब सन्तति जन्म लेती है, मौलिक दृष्टि से स्त्री में गर्भाधान के माध्यम से सन्तान का जन्म होता है। सम्बन्धित मन्त्र यह है–

पुरुषे ह वै अयम् आदितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतः। तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यः। तेजः संभूतम्। आत्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥१॥

पुरुष का वह ओज-वीर्य नारी में जाकर स्त्री के अंग जैसा बन

जाता है, विजातीय द्रव होने पर भी वह नारी का अपना अंग हो जाता है, फलतः वह नारी को पीड़ा नहीं देता, वह नारी यह पुरुष का अंश रूप होकर उसकी आत्मा ही अपने भीतर आ गई है, इस स्नेह परिपूर्ण भावना से कुपथ्यादि का यत्नपूर्वक त्याग कर उसकी परिपालना करती है। अपने पति को ही अपने भीतर पाल रही होती है, पत्नी सन्तान के रूप में अपने पति अंश का पालन कर रही होती है। फलतः वह पति द्वारा भी पूरे उत्तरदायित्व पालन की अधिकारिणी होती है। अपने जन्म से पहले ही सन्तान कैसी हो—यह भावना करना वैदिक संस्कृति की विशिष्ट देन है। इस संसार के चक्र को चलाने के लिए ही ये लोक इस प्रकार बनाए गए हैं। वस्तुतः यह पुरुष का द्वितीय-दूसरा जन्म होता है—सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भं बिभर्त्ति सोऽग्र एव कुमारं जन्मनः अग्रेऽधिभावयति। स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रे अधिभावयत्यात्मानमेव तद् भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥३॥

पुत्र अपने संस्कारों को लेकर जन्म लेता है, एक प्रकार से पिता ही पुत्र के स्वरूप में जन्म लेता है। इसे ऋषि ने आत्मा या पुरुष का जन्म कहा है। इस प्रकार पुरुष का पहला जन्म तब होता है जब वह गर्भ में प्रविष्ट होता है, कुमार या कुमारी के रूप में जन्म लेना उसका दूसरा जन्म होता है, पुत्र के रूप में उसकी आत्मा ही पुण्य कर्मों से कृतकृत्य होकर वयोवृद्ध होकर जब यहां से प्रस्थान करता है, तब वह यहां से जाता हुआ ही पुनः उत्पन्न हो जाता है, वह आत्मा का तीसरा जन्म होता है। सम्बन्धित ऋचा देखिए—

सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते। अथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति। स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥४॥

उपनिषत्कार उदाहरण देते हुए कहते हैं—एक बार ऋषि वामदेव ने घोषणा की थी—जब मैं गर्भ में था, तब ही जान गया था कि देवताओं को अनेक जन्मों में से गुजरना पड़ता है। ऋषि स्वीकार करते हैं उन्हें सैकड़ों जन्म रूपी नगरों में इस प्रकार जाना पड़ा जैसे लोहे को जाल में बांध दिया गया हो। जिस प्रकार जाल में फंसने पर श्येन (बाज) पक्षी उसे तेजी से फाड़ देता है, वैसे मैंने जन्म-मरण रूपी इस जाल को फाड़ दिया। मन्त्र-पाठ इस प्रकार है—

तदुक्तमृषिणा—गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा। शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयमिति। गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥५॥

ऋषि वामदेव की धारणा थी कि जन्म-जन्मान्तर के चक्रव्यूह से पार होना ही मानव का लक्ष्य होना चाहिए । यह सत्य जानने के कारण ऋषि वामदेव यह काया छोड़कर ऊर्ध्वगामी होकर उसका भेदन कर अमर हो गए । सम्बन्धित मन्त्र यह है–

स एवं विद्वानस्माच्छरीर भेदादूर्ध्वं उत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ।।६।।

इस उपनिषत् के पहले दो अध्यायों में–ब्रह्माण्ड में सृष्टि की उत्पत्ति और पिण्ड में पुरुष के जन्म की चर्चा की गई । इस तीसरे अन्तिम अध्याय में ऋषि यह जिज्ञासा प्रस्तुत करते हैं कि ब्रह्माण्ड में सृष्टि उत्पन्न करने वाला कौन है और इस पिण्ड में जीवन देने वाला कौन है ? वह आत्मा कौन सा है, जिसकी हम उपासना करें ? वह आत्मा कौन-सा है, जिसके, माध्यम से जीव संसार में रूप देखता है, जिससे यह शब्द सुनता है, जिससे यह गन्ध सूंघता है, जिसके माध्यम से वह वाणी का व्यवहार करता है, जिसके माध्यम से यह भोज्य पदार्थ स्वादु है या अस्वादु इसका भेद कर लेता है । मूल मन्त्र देखिए –

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा । येन वा रूपं पश्यति, येन वा शब्दं शृणोति, येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वा वाचं व्याकरोति, येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ।।१।।

आत्मा का स्वरूप बतलाते हुए अगली ऋचा में कहा गया है–हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मन की भावनाएं, मन के विचार, हमारा सम्यक् ज्ञान, सब तरह का ज्ञान (आज्ञानम्) विशेष विषय का ज्ञान, (विज्ञानम्) उत्कृष्ट ज्ञान ये सब जिसके कारण हैं, वही आत्मा है, हम में जो आध्यात्मिक तत्त्व हैं–मेधा (बुद्धि) अन्तर्दृष्टि (दृष्टिः) धैर्य (धृति) मनन शक्ति (मतिः) सूझबूझ (मनीषा) शक्ति (जूति) स्मरण-शक्ति (स्मृतिः) निश्चय (संकल्प) कर्म-परिश्रम (क्रतुः), प्राणशक्ति (असुः) इच्छा करना (कामः) स्वतः और दूसरों को वश में करना ये सब प्रज्ञान, चेतन स्वरूप आत्मा के ही नाम या स्वरूप हैं। मूल ऋचा यह है–

यदेतद् हृदयं मनश्चैतत्संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति। सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ।।२।।

परमात्मा के विषय में उपनिषत्कार कहते हैं–यह ब्रह्मा, यह इन्द्र, यह प्रजापति और दूसरे सब देवता, उन सब देवों के अतिरिक्त पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा अग्नि आदि पंच महाभूत, नेवला, सांप आदि पृथिवी आदि में मिले छोटे जीव-जन्तु, इतर प्राणियों के बीज, अण्डे से पैदा होने वाले अण्डज पक्षी, सांप आदि, जरायु से उत्पन्न होने

वाले मनुष्य, गौ, घोड़े आदि जरायुज, गर्मी से पैदा होने वाले कीट, मच्छर, मक्खी आदि स्वदेज, पृथिवी को फोड़ कर जन्म लेने वाले वृक्ष, गुल्म वनस्पति आदि उद्भिज आदि सभी प्रज्ञान-ब्रह्म हैं । घोड़े, गौएं, हाथी और जो कुछ भी प्राणि जगत् में जंगम गतिशील, उड़ने वाले पक्षी आदि तथा एक स्थान में स्थिर रहने वाले वृक्षादि स्थावर आदि सब प्रज्ञा-नेत्र हैं । ये सब प्रज्ञान में प्रतिष्ठित हैं. प्रज्ञान में ठहरे हुए हैं, प्रज्ञान ही ब्रह्म है । सम्बन्धित मन्त्र यह है-

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींष्येतानीमानि च क्षुद्र-मिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥३॥

इस प्रकार उपनिषत्कार ने ब्रह्म को प्रज्ञान कहा है, प्रज्ञान का अर्थ हुआ चेतनता । चैतन्य स्वरूपता ही ब्रह्म है । दिव्यशक्तियां सब तरह के भूतों के समूह, समस्त प्राणी, स्थावर, जंगम जो कुछ भी है, सब प्रज्ञानमय है-चेतनता से ओत-प्रोत । पहले आत्मा के लिए प्रज्ञान और चेतना आदि सब नाम दिए गए । (**सर्वाणि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति**) कहा गया, अब परमात्मा को प्रज्ञान कहा गया (प्रज्ञानं ब्रह्म) आत्मा और परमात्मा दोनों का स्वरूप प्रज्ञानं-चेतना है । जो उपासक यह सत्य जान लेता है, वह अमर पद प्राप्त कर लेता है । जिज्ञासु उपासक जब ज्ञान स्वरूप, चेतनास्वरूप प्रज्ञ आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान गया, तब वह इस मर्त्यलोक का उत्क्रमण कर उस स्वर्गलोक में सब कामनाएं पूर्ण कर अमर हो जाता है । तीसरे अध्याय का चौथा मन्त्र इस प्रकार है-

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकदुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके । सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ॥४॥

ऐतरेय उपनिषत् के अपने विषय का समापन करते हुए ऋषि उद्‌बोधन करते हैं-मेरी वाणी मन में स्थित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, मेरी वाणी में जो बात हो, वही मन में हो, वाणी तथा मन में कोई विरोध न हो, मेरा बाह्य स्वरूप सम्मुख-प्रत्यक्ष में जो हो, वही अप्रत्यक्ष में भी हो, मेरे बाहर जो कुछ हो, वही मेरे आभ्यन्तर में हो । वेद का ज्ञान मेरी बुद्धि में बना रहे, विद्वानों से जो कुछ मैंने जाना है और समझा है, वह मेरा साथ न छोड़े, जो कुछ मैंने पढ़ा है, वह दिन-रात मेरे साथ संलग्न रहे । जब मानव का वेद का ज्ञान, श्रुति का ज्ञान और अध्ययन का ज्ञान उसमें ओत-प्रोत हो जाएगा, उस समय वह अधिकार पूर्वक

कह सकेगा कि जो कुछ मैं कहूंगा, वह ऋत कहूंगा, सत्य ही कहूंगा, वेद श्रुति-अधीत मेरी रक्षा करें, वे उपदेष्टा की रक्षा करें, मेरी रक्षा करें, वक्ता की रक्षा करें। ऋषि का अन्तिम वक्तव्य इस प्रकार है-

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनः मे वाचि प्रतिष्ठितम् आविः आवीः मे एधि वेदस्य मे आवीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः, अनेन. अधीतेन अहोराजान् संदधन्ति। ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तत् माम अवतु, तद् वक्तारमवतु, अवतु माम् अवतु वक्तारम् ॥५॥

यहां ऋषि ने संकल्प किया है वह केवल ऋत कहेंगे, केवल सत्य बोलेंगे। वैदिक वाङ्मय में ऋत तथा सत्य का अनेक स्थानों पर साथ-साथ प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद १०,१९०-१ में **ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसः अध्यजायत**। ऋग्वेद ९,११३, २ में **ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुतः इन्द्राय इन्दो परिस्रव** यहां सत्य के विशेषण के रूप में ऋतवाक् शब्द का प्रयोग है। सत्य की वाणी में ऋत हो।

अनुशीलन वैदिक विद्वानों का निष्कर्ष यह है-ऋतवाक् हो सत्य के वचन में ऋत हो वह सत्य से ऊपरी कक्षा है। निष्कर्ष यही है कि ऋत अखण्ड ईश्वरीय विधान के लिए प्रयुक्त हुआ है और सत्य शब्द का सामाजिक विधान के लिए प्रयोग हुआ है। सामाजिक विधान तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर आश्रित होता है, परन्तु ईश्वरीय विधान ऋत अपरिवर्तनीय अखण्ड है।

-अभ्युदय, बी-२२
गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-११००४१

(वेदप्रकाश) के ग्राहकों से

वेदप्रकाश न मिलने के आपके कई पत्र समय-समय पर मिलते रहते हैं। कार्यालय से बहुत सावधानी के पश्चात् दो-दो बार चैक करके अंक भेजा जाता है, फिर भी पोस्ट-ऑफिस की गड़बड़ी से कभी-कभी पाठकों को अंक नहीं पहुंच पाता। इस सम्बन्ध में पाठकों के पत्र मिलने पर अगले माह के अंक के साथ दूसरी प्रति (यदि उपलब्ध हो तो) भेज दी जाती है। यदि पोस्ट-ऑफिस को भी पत्र लिखकर शिकायत करें तो हल अवश्य निकलेगा। इतना आप विश्वास रखें कि 'वेदप्रकाश' की व्यवस्था ठीक है और यहां से प्रत्येक व्यक्ति को नियमित रूप से भेजा जाता है।

'वेदप्रकाश' के कई सदस्यों का वार्षिक चन्दा जुलाई ९५ में समाप्त हो रहा है। कृपया बीस रुपये वार्षिक शुल्क शीघ्र भेज दें। 'वेदप्रकाश' के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें। जिससे शीघ्र कार्यवाही की जा सके।

-अजयकुमार

वेद एवं दर्शनानन्दग्रन्थसंग्रह-प्रकाशन

प्रिय पाठकगण ! सुहृद् बन्धुओ !

मैंने चारों वेदों के प्रकाशन की घोषणा करा दी । स्वामी दर्शनानन्द जी के ग्रन्थ की भी घोषणा करा दी । कार्य आरम्भ भी हो गया । उधर वेद मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया । उसके सामान की खरीद, देख-रेख में छह मास निकल गये । यह कार्य पूर्ण हो गया। मॉडल टाउन छोड़कर अब वेद मन्दिर इब्राहिमपुर, दिल्ली-११००३६ में स्थायी निवास हो गया है । इधर यह कार्य सम्पूर्णता की ओर आया तो आंख का ऑपरेशन कराना पड़ा । प्रभु की कृपा से ऑपरेशन सफल हो गया । चश्मा जून में मिल गया । पढ़ना-लिखना बन्द था । जून से लंगर-लगोटे कसकर इन दोनों ग्रन्थों में लग गया हूं इस वर्ष में दोनों ग्रन्थ अवश्य मिल जाएँगे ।

आप थोड़ा-सा धैर्य रक्खें । गोविन्दराम हासानन्द ६०-७० वर्ष से आर्य जगत् की सेवा कर रहा है । आपको ग्रन्थ मिलेंगे और अवश्य मिलेंगे । दर्शनानन्दग्रन्थसंग्रह को सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए मैं जो परिश्रम कर रहा हूं, वह आज तक तो किसी ने किया नहीं है । अब तक जो अनुवाद हुए हैं, शब्द और लाइनें ही नहीं पृष्ठ के पृष्ठ भी छूटे हुए हैं । इसे सुन्दरतम रूप देना है । वेदों को भी भव्यरूप में छापना है। इन सब में समय लगता है । जिन्हें बहुत जल्दी है, उन्हें आमन्त्रण देता हूँ, कभी आश्रम में आ जाइए और देखिए, देर क्यों हो जाती है । इन दोनों योजनाओं में देरी होने से प्रकाशक को भी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि आपको ज्ञात ही होगा कि पिछले छ: महीनों में कागज के मूल्यों में असाधारण वृद्धि हुई है । मूल वेद जो कि आपने लागत मात्र पर ही बुक किया है आज उसकी लागत में भी वृद्धि हो चुकी है, परन्तु फिर भी ये योजनाएं जल्दी से जल्दी पूरी की जाएंगी तथा यह ग्रन्थ उन्हीं मूल्यों पर आपको उपलब्ध होंगे जिन पर आप ने बुक किये हैं ।

अत: मुझे विश्वास है कि आप सभी ग्राहकगण धैर्य तथा विश्वास बनाए रखकर सहयोग देंगे ।

सधन्यवाद

–जगदीश्वरानन्द सरस्वती

बहुत दिनों बाद प्रकाशित पुस्तकें

जीवात्मा : *पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय ।* जीवात्मा के लक्षणं, शरीर और शरीरी, अभौतिक आत्मा, पुनर्जन्म, मुक्ति, जीव-ब्रह्म-सम्बन्ध आदि अनेक विषयों पर महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह । **मूल्य :** ४०-०० रु॰

प्रार्थनालोक : *स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।* यज्ञ से पूर्व स्तुति-उपासना के आठ मन्त्रों, प्रात:काल पाठ करने के मन्त्रों तथा शिव संकल्प के छ: मन्त्रों की सरल-सुबोध व्याख्या । **मूल्य** ४०-००

सामाजिक पद्धतियाँ : *महाशय मदनजित् आर्य ।* सन्ध्या, हवन-मन्त्र, यज्ञोपवीत, प्रथम वस्त्र परिधान, जन्म दिवस, विवाह पद्धति, सगाई पद्धति, सेहरा बन्दी, शैंत, मिलनी, गार्हपत्याग्नि-पद्धति, व्यापार-सूत्र, दुकान का मुहूर्त, अन्त्येष्टि क्रिया आदि आवश्यक सामाजिक पद्धतियों का संग्रह । **मूल्य :** १२-०० रु॰

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार : *पं॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार।* इस ग्रन्थ में वैदिक विचारधारा को विज्ञान की कसौटी पर परखने का प्रयत्न किया गया है, ताकि हमारी नई पीढ़ी जिन मान्यताओं को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ती जा रही है, उन पर नई दृष्टि से सोचें । **मूल्य:** १५-०० रु॰

षड्दर्शनम् : *स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।* वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है । वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष-योग, कर्मसिद्धान्त यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है । **मूल्य:** १५-०० रु॰

THE ONLY WAY ***by Mahatma Anand Swami Saraswati.*** The PATH which Vedas, Upnishads and Brahman Granthas expound is the PATH of TRUTH. Which we have to follow in order to avoid misery, sorrow, disease, poverty and starvation. Price Rs. 30.00

ANAND GAYATRI KATHA ***by Mahatma Anand Swami - Saraswati.*** It contains touching narration of `GAYATRI' in a very simple language, also describes the manner in which GAYATRI' is muttered. Price Rs. 30.00

नये प्रकाशन

दीप्ति : *स्वामी विद्यानंद सरस्वती ।* अनेक विषय हैं जिन पर आर्यसमाज में विभिन्न स्तरों पर समय-समय पर विचार होता आया है, परन्तु वे आज तक विवादास्पद बने हुए हैं । लेखक ने उन्हें गम्भीरतापूर्वक विचार कर निर्णय के तट पर पहुंचाने का प्रयास किया है। **मूल्य** ८०-०० रु०

वैदिक ज्ञानधारा : *प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु ।* आर्यसमाज के कई दिवंगत महात्माओं, हुतात्माओं, विचारकों, नेताओं व उपदेशकों के महत्त्वपूर्ण लेखों, भाषणों, शास्त्रार्थों व प्रवचनों का संकलन । **मूल्य :** ८०-००

बिखरे मोती : *डॉ० भवानीलाल भारतीय ।* आर्य महापुरुषों के रोचक, शिक्षाप्रद संस्मरणों, शास्त्रार्थों की नोक-झोंक, आर्यों के आदर्श चरित्र को प्रख्यापित करने वाले जीवन प्रसंगों, साहित्यकारों की हास्यपूर्ण उक्तियों तथा उपदेशकों की हाजिर जवाबी को एक साथ प्रस्तुत किया गया है । **मूल्य :** ४०-०० रु०

आर्य सूक्ति-सुधा : *प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु ।* महर्षि दयानन्द जी महाराज से लेकर शस्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्तिप्रकाश जी व श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक तक अधिक से अधिक शीर्षस्थ वैदिक विद्वानों की सूक्तियों का संग्रह, समुद्र मन्थन जैसा प्रयास है । **मूल्य** १२-००

सत्यार्थप्रकाश : (आधुनिक हिन्दी रूपान्तर) *स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।* आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त । अपने स्वाध्याय के लिए अपने मित्रों-संबंधियों को भेंट देने के लिए उपयोगी संस्करण । **मूल्य** १२५-०० रु०

योग-शिक्षा : (चार भागों में) : *डॉ० देवव्रत आचार्य ।* योग का अभ्यास प्रत्येक बालक व बालिका को अनिवार्य रूप से करना चाहिए । यह पुस्तकें कक्षा सप्तम से दशम तक के छात्र-छात्राओं की शारीरिक अवस्था और मानसिक परिस्थिति के अनुसार उन्हें योग-शिक्षा का मार्गदर्शन करेगीं । विद्यार्थियों के लिए दिनचर्या, स्वस्थवृत्त, प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार-साधना, आसन क्रिया एवं स्वाध्याय का समन्वित पाठ्यक्रम बनाया है । जिसमें उनका स्वास्थ्य समुन्नत, मन एकान्त, बुद्धि कुशाग्र और मानवीय गुणों का उद्भव होगा ।

मूल्य प्रथम भाग १२-०० रु०
अन्य तीन भाग प्रत्येक १०-०० रु०

BODH KATHAYEN : *Mahatma Anand Swami Saraswati.*
Collection of didactic tales by Swamiji, each Katha delivered by Swamiji is very interesting, it encourages us to lead healthy and righteous life and provides inner peace and bliss. Swamiji's way of telling a katha is unique and he brings to bear on it the rich experience of his whole life.
Price : Rs. 40-00

HOW TO LEAD LIFE ? : ***Mahatma Anand Swami Saraswati.***
Which is the best way to live in this world ? To answer this question Swamiji dealt with the various Mantras of Yajur Veda so as to explain how to drive maximum happiness out of life Swamiji says that this world is not permanent, it is in flux, human life is also temporary, so one should be ever conscious of death and should not postpone the recitation of Lord's name
Price : Rs. 30-00

बोध-कथा (पृष्ठ २ का शेष)

है ?" बालक ने कहा–"मैं अंगुलि घुमा कर दूध से मक्खन निकाल रहा था" बादशाह ने फिर झिड़का–"क्या दूध से इस प्रकार मक्खन निकाला जाता है ?"

बालक ने बादशाह को जवाब दिया–आप बुरा न मानें। मैं आपके पहले सवाल का जवाब दे रहा था। बादशाह ने पूछा–"यह कैसे ?" बालक बोला–"बादशाह आप जानते हैं, दूध से मक्खन निकालने के लिए दूध में जाग लगाना पड़ता है। दही जमने पर मथानी से बिलोना पड़ता है, फिर मौसम का ख्याल कर ठण्डे-गरम पानी के छींटे देकर मक्खन निकाला जाता है। इसी प्रकार लम्बी साधना से हृदय का मन्थन कर बड़ी कोशिश कर भगवान् के दर्शन हो सकते हैं।"

बादशाह ने कहा–"यह बात तो ठीक है, पर मेरे दूसरे सवाल का जवाब क्या है ?" बालक ने कहा–"क्या आप अपने सवाल का जवाब अपने उस्ताद या गुरु से चाहते हैं तो क्या उसे पूछने का यही ढंग होता है ?" बादशाह अपनी गलती समझ गया। वह सिंहासन से उतर कर नीचे बैठ गया और बालक को अपनी मसनद पर बैठने के लिए बुलाया।

बालक ने कहा–"जिस तरह एक उस्ताद गुरु सबका इन्साफ-न्याय करता है, उसी प्रकार इस दुनिया का सिरजनहार भगवान् खुदा भी हर एक की अच्छाई या बुराई देखकर उनका इन्साफ करता रहता है।"

प्रस्तुति–**नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

आगामी प्रकाशन

VEDIC LIGHT (A clue to the understanding of the vedas) : ***Swami Vidyanand Saraswati*** The vedas are the bed-rock on which the edifice of Aryan culture and civilisation has been raised- they are the quintessence of India's moral and spiritual philosophy–the fountain head of all knowledge. This small book is intended to enable the general readers to have an idea of the **Vedas** without going through the Voluminous Work.

Aryavarta (The original habitat of the Aryans) : ***Swami Vidyanand Saraswati.*** To day the greatest hurdle in the way of unity and integrity of India, is the wrong notion that the Aryans from some foreign land invaded this country. In order to understand, to recapture and live upto the best in our culture it is necessary to discover the Aryan discipline, character and outlook and to corest the the secrets of the Vedas.

Dayananad (Architect of modern India) : ***Swami Vidyanand Saraswati.*** Dayanand was a visionary, who looked for ahead of his times and visualised a society based on moral values, social justice and equality of apportunity all that in a spritual background and Indian environment. The present treatise is an eloboration of these focal points.

VEDIC CONCEPT OF GOD : *Swami Vidyanand Saraswati.* While the belief in a Supreme Power is almost universal, its concept, blurred as it is by fog of wrong notions. These descriptions often conflict with each other. Never was the need greater than today to make the people conscious of the real nature of god. The present work is a step in this direction.

संस्कारसमुच्चय : *पं० मदनमोहन विद्यासागर ।* पूर्णतया संशोधित तृतीय संस्करण–संस्कारों सम्बन्धी नयी सामग्री इसमें जोड़ी गई है । संस्कारविधि के सभी संस्कारों की पूरी विधि और सम्पूर्ण मन्त्रों की व्याख्या के साथ आर्यों में प्रचलित एवं समय-समय पर किये जाने वाले विविध कर्मों की विधियाँ दी गई हैं । अन्य बहुत सी प्रचलित कर्मकाण्डात्मक पद्धतियाँ बढ़ाई गई हैं ।

राष्ट्रीय वैदिक ऋचाएँ : *प्रो० कृष्णवल्लभ पालीवाल ।* वेदों में मातृभूमि, स्वराज्य, राज्य-व्यवस्था, राष्ट्र-निर्माण, राष्ट्रसंगठन, राष्ट्ररक्षा, सैनिक-शक्ति, युद्ध आदि विषयों पर अनेक मन्त्र हैं जो अत्यन्त प्रगतिशील व व्यावहारिक हैं । वेदों का सन्देश है–समृद्ध, तेजस्वी, विस्तृत, समान आचार संहिता वाले राष्ट्र का निर्माण । यहां केवल एक सौ पचास मन्त्रों द्वारा वैदिक राष्ट्रभक्ति की एकाकी प्रस्तुत की है ।

यज्ञ और संन्यासी

— स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

यज्ञ-विधान के अन्तर्गत सामान्य प्रकरण के आरम्भ में ऋत्विजों का लक्षण करते हुए उसमें वर्ण तथा आश्रम का उल्लेख नहीं हुआ है। परन्तु मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों तथा सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा संस्कारविधि आदि में जहाँ कहीं भी वर्णाश्रमों के कर्त्तव्यों का निर्देश हुआ है, वहाँ सर्वत्र याजन कर्म केवल ब्राह्मण का कहा गया है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास—इन तीन आश्रमों के कर्त्तव्यों में भी कहीं याजन कर्म का उल्लेख नहीं हुआ है। अतः ऋत्विक् तथा पुरोहित केवल ब्राह्मण गृहस्थ ही हो सकता है। पुरोहित के विषय में तो संस्कारविधि में जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत टिप्पणी में ऋषि का स्पष्ट निर्देश है—"धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि को पूर्णरीति से जाननेहारे, विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।"

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वर्णाश्रमविषय के अन्तर्गत संन्यासी के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्देश करते हुए ऋषि लिखते हैं—

"शिखासूत्रादिकं हुत्वा मुनिर्मननशीलः सन् प्रव्रजति संन्यासं गृह्णाति। पूर्वेषां त्र्याणामेवाश्रमिणामनुष्ठातुं योग्यं यद् बाह्यक्रियामयमस्ति, संन्यासिनां तन्न।"

अर्थात्—शिखासूत्रादि का होम करके मनस्वी होकर संन्यास ग्रहण करता है। पहले तीन आश्रमियों के अनुष्ठान करने योग्य जो कुछ भी है, चाहे वह क्रियामय न भी हो तो भी, वह सब संन्यासी के लिए नहीं है।

इतना ही नहीं, प्रथम तीन आश्रमियों के लिए विहित पंचमहायज्ञों का उल्लेख कर प्रकारान्तर से चतुर्थाश्रमी संन्यासी के लिए उनका निषेध करते हुए, उसके लिए विहित विशेष प्रकार के पंचमहायज्ञों का विधान करते हुए स्वामी जी लिखते हैं—"एवं लक्षणाः पञ्चमहायज्ञा विज्ञानधर्मानुष्ठानमया भवन्तीति विज्ञेयम्"—संन्यासी के लिए इस प्रकार के विज्ञान और धर्मानुष्ठानवाले ही पञ्चमहायज्ञ होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यज्ञोपवीत का सम्बन्ध बाह्य कर्मकाण्ड की अग्नियों से होता है। स्वामीजी के पूर्वोद्धृत निर्देश के अनुसार संन्यासी इन अग्नियों एवं तत्सम्बन्धी बाह्य कर्मकाण्डों का परित्याग कर देता है। परिणामतः इन बाह्य कर्मकाण्डों का अधिकार प्रदान करनेवाले यज्ञोपवीत के अन्यथा सिद्ध हो जाने पर वह उसे त्याग देता है।

शतपथ ब्राह्मण (२।६।१।१८) में स्पष्ट कहा है—

"ते सर्व एव यज्ञोपवीतिनो भूत्वा इत्याद्यजमानश्च ब्रह्मा च पश्चात् परीतः

पुरस्तादग्नीत्"।

अर्थात् ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, उद्गाता, यजमान आदि ये सब यज्ञोपवीती पश्चिम दिशा को चलते हैं और अग्नीत् पूर्व दिशा को।

इससे स्पष्ट है कि यदि संन्यासी ब्रह्मा, होता, उद्गाता, अध्वर्यु आदि कुछ भी बनेगा तो उसके लिए यज्ञोपवीती होना आवश्यक होगा, अन्यथा विधिहीन होने से यज्ञ निष्फल हो जाएगा। और यदि अब संन्यासी यज्ञोपवीत धारण करेगा तो वह संन्यास की दीक्षा लेते समय यज्ञोपवीत-त्याग की आश्रम-मर्यादा भंग करने का दोषी होगा।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार भी 'यज्ञोपवीती एव याजयेत'। यहाँ आया 'एव' पद द्रष्टव्य एवं मन्तव्य है। इस वचन से यज्ञोपवीतधारी ही यज्ञ कराने का अधिकारी है, अन्य अर्थात् अयज्ञोपवीती कदापि नहीं। लाट्यायन श्रौतसूत्र में भी इसी मत का समर्थन करते हुए लिखा है—**"सर्वेषां यज्ञोपवीतोदकाचमते नित्ये कर्मोपयाताम्"**—१। २। ४, अतः इसकी व्याख्या में स्पष्ट किया—**"सर्वेषां उद्गातृप्रभृतीनां चतुर्णामपि आर्त्विजी उपक्रमवेलायां यज्ञोपवीतमुदगाचमननं नित्यं कर्मोपयतां कर्म कुर्वताम्।"**

अर्थात्—यज्ञों में जो होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा आदि रूप से वरण किए गए ऋत्विज हैं, उनको कार्य के आरम्भ में यज्ञोपवीत-धारण, जल का आचमन आदि कार्य करने चाहिएँ। संन्यासी के सन्दर्भ में यह सब कैसे संगत होगा?

यज्ञ में कुछ आहुतियाँ ब्रह्मा को भी देनी होती हैं। यज्ञ के अन्त में प्रायश्चित्ताहुति तो ब्रह्मा को अवश्य देनी होती है। इसके बिना यज्ञ पूर्ण हुआ नहीं माना जाता और ऐतरेय ब्राह्मण के 'यज्ञोपवीती एव याजयेत' इस स्पष्ट विधान के अनुसार अयज्ञोपवीती अहुति नहीं दे सकता। इसलिए अयज्ञोपवीती संन्यासी को यज्ञ का ब्रह्मा नहीं बनाया जा सकता।

ब्रह्मा द्वारा आहुति देने का विधान गोपथ ब्राह्मण में इस प्रकार किया है—**"यस्य चैवं विद्वान् ब्रह्मा दक्षिणत उदङ्मुख आसीनो यज्ञ आहुती जुहोतीति ब्राह्मणम्"**। यहाँ ब्रह्मा के आहुति देने का विधान करते हुए प्रकारान्तर से संन्यासी की ब्रह्मा के पद पर नियुक्ति का निषेध भी कर दिया है।

इस विषय में सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य सभा ने व्यवस्था दी हुई है जो सभा के ७७वें वार्षिक विवरण (वर्ष १९८४-८५) में इस प्रकार अंकित है—

"१२—यज्ञ करना ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, एवं वानप्रस्थ तक ही है। संन्यास आश्रम में यज्ञ नहीं है। पुरोहित केवल गृहस्थ होता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी पुरोहित-कर्म नहीं करा सकते।"

जिस प्रकार वेदों, ब्राह्मणों, गृह्यसूत्रों, स्मृतियों आदि में वर्णाश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण के कर्त्तव्य कर्मों में यज्ञ करने-कराने तथा संस्कारों में पौरोहित्य करने का विधान किया गया है, वैसा निर्देश संन्यासी के लिए कहीं नहीं मिलता। शास्त्र के विरुद्ध अपने आचरण का औचित्य सिद्ध करने के प्रयास में कुछ लोग द्रविड़ प्राणायाम करते

देखे जाते हैं। "पञ्चजनाः मम होत्रं जुषन्ताम्" (ऋ० १० । ५३ । ५) में आए 'पञ्चजनाः' पद से वे ब्राह्मणादि चार वर्णों के साथ पाँचवें 'संन्यासी' का ग्रहण करते हैं। पर 'पञ्चजन' से चार वर्ण और एक संन्यासी अभिप्रेत हैं, इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। मिल भी नहीं सकता। गाय-भैंस के प्रसंग में तीसरे पदार्थ के रूप में भेड़, बकरी जैसे तत्सदृश पशु की गिनती हो सकती है, मेज़-कुर्सी की नहीं। इसी प्रकार चार वर्णों के सन्दर्भ में वर्ण नहीं तो मनुष्य-वर्ग के किसी वर्णसदृश विभाग का ग्रहण हो सकता है, आश्रम का नहीं। प्रायः विद्वानों ने तथा कोशों में पाँचवें से निषाद का ग्रहण किया है। उव्वट का लेख इस विषय में बड़ा स्पष्ट है। उनका निर्णय है—"चत्वारो वर्णाः निषाद पञ्चमः पञ्चजनः तेषां यज्ञाधिकारोऽस्ति।" आप्टे ने निषाद का अर्थ किया है—"भारत की एक जंगली आदिम जाति, जैसे—मछुए, शिकारी आदि—'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः' (वा० रा०), पतित जाति का मनुष्य, एक वर्णसंकर जाति, विशेषकर शूद्रा स्त्री से उत्पन्न ब्राह्मण का पुत्र (मनु० १० । ८)। हमारा इस अर्थ के प्रति कोई आग्रह नहीं है। परन्तु वर्णों में संन्यासी का समावेश नहीं हो सकता। यज्ञोपवीती न होने से संन्यासी को शूद्रकोटि में नहीं डाला जा सकता।

'यदि पौरोहित्य अथवा यज्ञ कराने के लिए कोई गृहस्थ न मिले तो संन्यासी से यज्ञ या संस्कार कराने में क्या आपत्ति है?' वस्तुतस्तु यह बहाना-मात्र है। हमने एक गोष्ठी में ऐसा कहनेवाले दो प्रतिष्ठित संन्यासियों से पूछा—"क्या किसी अभ्यर्थी यजमान से कभी आपने कहा है कि पहले आप किसी गृहस्थ विद्वान् की खोज करें, कोई नहीं मिलेगा तो हम करा देंगे?" दोनों ने स्वीकार किया कि हम ऐसा कभी नहीं करते। उन्हीं में से एक से हमने कहा कि अमुक स्थान पर एक ऐसे गृहस्थ विद्वान् उपस्थित थे जिन्हें आप भी अपने से अधिक योग्य मानते हैं। तब उनके रहते आपने क्यों यज्ञ कराया? इसके उत्तर में वे क्या कह सकते थे? मौन साधकर रह गए। इसीलिए हम यह कहते हैं कि यह अपनी बात रखने के लिए बहानामात्र है।

यज्ञादि करना-कराना ब्राह्मण का शास्त्रोक्त धर्म है। यही उसकी आजीविका है। उस पर भरे-पूरे परिवार के भरण-पोषण का दायित्व है। उसकी तुलना में संन्यासी की आवश्यकताएँ सर्वथा नगण्य हैं। ऐसी अवस्था में किसी संन्यासी का यज्ञादि कराना शास्त्रविरुद्ध होने से अनधिकार चेष्टा होने के साथ-साथ एक गृहस्थ ब्राह्मण के प्रति अन्याय या अत्याचार नहीं है क्या? संन्यासियों के पौरोहित्य तथा यज्ञकर्म में प्रवृत्त होने के मूल में उनकी वित्तैषणा है जिसका कोई अन्त नहीं होता।

ब्रह्मा—ब्राह्मणग्रन्थों में लिखा है—

ऋग्वेदेन होता करोति यजुर्वेदेनाध्वर्युः सामवेदेनोद्गाता अथर्वैर्वा ब्रह्मा।

अर्थात्—ऋग्वेद से होता, यजुर्वेद से अध्वर्यु, सामवेद से उद्गाता और अथर्ववेद से ब्रह्मा की नियुक्ति करे। ब्रह्मा की नियुक्ति के विषय में गोपथ ब्राह्मण (पूर्व० २। २४) में कहा है—"**अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम् अथर्वाङ्गिरोविद् ब्राह्मणम्**"—अथर्व से

ब्रह्मा होता है, अथर्व का जाननेवाला ब्रह्मा होता है। इसी से अथर्ववेद का एक नाम ब्रह्मवेद है। वस्तुतः ऋग्वेद से अथर्ववेद तक अर्थात् चारों वेदों का विद्वान् ब्रह्मा होता है। इसी से औपचारिक रूप में ब्रह्मा चतुर्मुख = चार मुखवाला कहलाता है। वर्तमान में सदा सर्वत्र चारों वेदों के विद्वान् ब्रह्मा का मिलना संभव नहीं। तथापि जो व्यक्ति न संस्कृत का विद्वान् है, न वेदादिशास्त्रों से परिचित है और न जिसे याज्ञिक विधि-विधान की जानकारी है, उसे ब्रह्मा के आसन पर बिठाना इस पद का अवमूल्यन करना है। इन दिनों जो हिन्दी के शब्दों का भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते, ऐसे लोगों के ब्रह्मत्व में किए जानेवाले यज्ञ से किस सुफल की आशा की जा सकती है? यदि ब्रह्मा के पद के अनुरूप व्यक्ति न मिले तो यज्ञ करानेवाले को संचालक, संयोजक, निदेशक, व्यवस्थापक जैसा नाम देकर काम चला लें, किन्तु ब्रह्मा पद का उपहास करना यज्ञ का अपमान करना है।

ब्रह्मा का काम कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख होकर यज्ञ की समाप्तिपर्यन्त चुप रहकर यज्ञ का निरीक्षण करना है। होता के द्वारा अन्यथा कर्म किए जाने अथवा उद्गाता के द्वारा मन्त्रपाठ में भूल होने पर संस्कृत में निर्देश-भर करे। यज्ञ में प्रयुक्त मन्त्र परब्रह्म के शब्द हैं। उन्हीं का उच्चारण होना चाहिए। ब्रह्मा के लिए आदेश है—"**ब्रह्मन् मा त्वं वदो बहु**" (यजुः० २३।२५)—हे ब्रह्मन्। तू बहुत मत बोल। शतपथ ब्राह्मण (१।७।४।१९) में भी ब्रह्मा को चुपचाप बैठने का आदेश है। ऋषि दयानन्द ने 'भवतन्नः समनसौ०' (यजुः० ५।३) के भाष्य में लिखा है—"यज्ञ प्राकृत मनुष्यों की भाषारूपी वचन से रहित हों।"

उपर्युक्त शास्त्रवचनों से यज्ञ में वाचालता या ब्रह्मा तक का प्रवचन करना निषिद्ध है। यज्ञ के बीच में रुक-रुककर मन्त्रों की व्याख्या के माध्यम से मनोरंजन करना सर्वथा अशास्त्रीय है। हारमोनियम पर भजन बोलना, कविता करना, चुटकुले सुनाना आदि सर्वथा अनुचित है। इस व्यवस्था का उल्लंघन होने से शास्त्रीय विधि गौण होकर मनोरंजन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है और यज्ञ की गरिमा को आघात पहुँचता है। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म न रहकर मनोरंजन का रूप ले लेता है। यज्ञ की समाप्ति पर अच्छे स्तर पर (जो यज्ञ के अनुरूप हों) भजन और व्याख्यान कराए जा सकते हैं।

पूर्णाहुति—पूर्णाहुति करने का अधिकार यजमान को होता है और यजमान वह कहलाता है जो ऋत्विग्वरण करता है और अग्न्याधान से लेकर अन्त तक यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त होता है। इसलिए अग्न्याधानक्रियारहित व्यक्ति को पूर्णाहुति का अधिकार नहीं है। जिसने आरम्भ नहीं किया वह अन्त या समापन कैसे कर सकता है? प्रायः पूर्णाहुति के समय यज्ञविधान के सभी नियमों को ताक में रखकर लोगों को बुला-बुलाकर आहुति डालने के नाम पर सामग्री फिंकवाना यज्ञ का उपहास करना है। न ऋत्विग्वरण किया, न विधिवत् यज्ञोपवीत धारण किया, न आचमनादि किया—यहाँ तक कि जूते खोलकर हाथ-पैर भी न धोये और हाथ बढ़ा सामग्री लेकर यज्ञकुण्ड की ओर फेंक दी। तीन-तीन

मिनट में यजमान बदलते रहते हैं—आते जाओ, चलते जाओ। ब्रह्मा या पुरोहित यज्ञोपवीत डलवा ही देते हैं तो तथाकथित यजमान आसन से उठते ही गले से निकालकर गली या सड़क में फेंक देते हैं। जो काम औरंगज़ेब तलवार के ज़ोर से न करवा सका था, वही हम आज स्वेच्छापूर्वक हँसते-खेलते कर रहे हैं। अन्त में पंक्तिबद्ध होकर ब्रह्मा के पैर छूते जाने और चढ़ावा चढ़ाते जाने अथवा दक्षिणा (उससे अतिरिक्त जो ब्रह्मा जी आर्यसमाज के अधिकारियों से प्रायः ठोक-बजाकर पहले नियत कर चुके होते हैं) देने का प्रदर्शन होता है। जैसे पौराणिक लोग मूर्ति पर दो फूल चढ़ाने को मोक्षलाभ का पासपोर्ट समझते हैं, वैसे ही आर्यसमाजी हवनकुण्ड में दो चुटकी सामग्री डालने को 'स्वर्ग का टिकट मिल गया' समझने लगे हैं। वस्तुतः इस सबके मूल में अधिकारियों तथा ऋत्विजों की लोभ की वृत्ति है। ऐसे यज्ञों से विशेष लाभ की आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ गीता १६।२३

—**स्वामी विद्यानन्द सरस्वती** कृत **दीप्तिः** से

मेरा वैदिक धर्म मुझे क्यों प्यारा है?

लेखक—पं० लोकनाथ तर्कवाचस्पति

संसार की सभी वस्तुएँ प्रतिक्षण बदलती रहती हैं। इसीलिए संसार को परिवर्तनशील माना गया है। यदि कोई वस्तु परिवर्तन से रहित है तो वह धर्म ही है। जड़ तथा चेतन, सब वस्तुओं में धर्म रहता है तथा वह स्वरूप से नित्य है। अतः वह परिवर्तन-चक्र से अलग है। जहाँ अग्नि होती है वहाँ प्रकाश व गर्मी भी अवश्य होगी। कारण? यह अग्नि का धर्म है और धर्म का परिवर्तित होना असम्भव है। जीवात्मा चेतन है और ज्ञान एवं प्रयत्न उसके धर्म हैं। जहाँ जीवात्मा होगा, वहाँ ज्ञान एवं प्रयत्न का होना भी निश्चित है, आवश्यक है। सत्य तथा असत्य का निर्णय करके सत्य को ग्रहण करना और असत्य का त्यागना ही आत्मा का शुद्ध स्वरूप माना जा सकता है।

झगड़ों का कारण अविद्या—इस युग के सबसे बड़े विचारक ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियम बनाते हुए एक नियम यह भी बनाया है कि "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" ऋषि दयानन्द यह चाहते थे कि यदि प्रत्येक आत्मा ज्ञान द्वारा असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण कर ले तो संसार के समस्त लड़ाइयाँ-झगड़े समाप्त हो सकते हैं और संसार पुनः आनन्द व शान्ति का धाम

बन सकता है। वर्तमान के सभी झगड़ों का मूल कारण अविद्या तथा कुसंस्कार हैं। इसलिए कहना पड़ता है कि मनुष्यों ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझा। धर्म तो परमात्मा का साक्षात्कार करना सिखाता और अपनी उन्नति के साथ-साथ प्राणीमात्र की उन्नति का निर्देश करता है तथा प्रेम का ऐसा सुन्दर उपदेश देता है जिसका उदाहरण मिलना कठिन है।

धर्म एक है, एक ही रहेगा—धर्म तो एक ही हो सकता है, अनेक नहीं। आज जो विभिन्न सम्प्रदाय और मत-पंथ प्रचलित हैं, उनको धर्म का नाम देना भारी भूल है। उनको मत अथवा सम्प्रदाय कहना उचित होगा। जीवात्मा स्वरूप से एक ही प्रकार के हैं, अतः उनका धर्म भी एक ही होना चाहिए। सृष्टि के आरम्भ से लेकर जब तक सृष्टि रहेगी, तब तक उनका धर्म एक ही होना चाहिए, क्योंकि धर्म परिवर्तनशील पदार्थ नहीं। यह धर्म का शुद्ध तथा वास्तविक स्वरूप है। आज जितने सम्प्रदाय प्रचलित हैं, वे जीवों के व्यावहारिक जगत् में उतरने के समय से सिद्ध नहीं हो सकते। इन सम्प्रदायों के संस्थापक व्यक्ति-विशेष हुए हैं। इनका एक निरन्तर इतिहास उपलब्ध है जो पाँच सहस्त्र वर्ष से आगे नहीं जाता, जबकि इस सृष्टि को उत्पन्न हुए लगभग दो अरब वर्ष हो गए हैं। इसलिए इन्हें सम्प्रदाय अथवा मत के नाम से पुकारना ही युक्तियुक्त है। यदि किसी को धर्म के नाम से पुकारा जा सकता है तो वह मनुष्यों की सृष्टि के आरम्भ से ही प्रचलित होनेवाला, प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण मेरा प्यारा वैदिक धर्म ही है जो मुझे भी प्यारा है और प्रत्येक जीव को प्यारा हो सकता है।

धर्म और न्याय एक ही है—धर्म का दूसरा नाम न्याय भी है। मेरा धर्म मुझे इसलिए भी प्यारा है कि वह मुझे न्याय करना, न्याय मानना और न्याय परखना सिखाता है। एक समय में एक से अधिक पति बनाने या मानने से यदि एक स्त्री व्यभिचारिणी कही जा सकती है, तो निश्चय ही एक मनुष्य भी एक समय में एक से अधिक स्त्रियाँ बनाने या मानने पर उसी प्रकार से दोषी समझा जाना चाहिए। यह बहुत बड़ा अन्याय है कि उपर्युक्त व्यवहार से स्त्री को अधम व पुरुष को भला माना जाय। इस प्रकार के सिद्धान्तों को माननेवाले सम्प्रदाय बुद्धिमान् व्यक्ति के लिए कभी स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकते। मेरा धर्म इस दृष्टि से स्त्री व पुरुष को समान अधिकार देता है। मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक विचरे और स्त्रियाँ घर की चारदीवारी में बन्द रहें—यह कैसा धर्म हुआ? मनुष्य तो खुले मुँह फिरें, वायु-सेवन करें तथा स्त्रियाँ मुँह पर कपड़ा डालकर फिरें—यह अनुचित है।

स्त्री-पुरुष की समानता—मेरा धर्म यह भी नहीं सिखाता कि मृत्यु के पश्चात् पुरुषों को तो किसी स्थान-विशेष पर निश्चित संख्या में कुछ वस्तुएँ प्राप्त होंगी, परन्तु स्त्री उनसे वञ्चित रखी जायगी। मेरा धर्म न्याय के अनुसार यह बताता है कि यदि स्त्री के मर जाने पर पुरुष के लिए दूसरी स्त्री का विधान शास्त्र के अनुसार उचित है, तो पति के मर जाने पर स्त्री के लिए भी दूसरे पति का विधान उचित है। जो विधि एक के लिए है वही दूसरे के लिए भी। स्त्री और पुरुष में भेद नहीं है।

परमात्मा न्यायकारी है—मेरा धर्म यह स्वीकार नहीं करता कि परमात्मा कोई काम न्याय के विरुद्ध करते हैं। खोटे कर्म करनेवाले को बिना दण्ड दिये क्षमा कर देता है और शुभ कर्मों का फल दुःख-कष्ट के रूप में किसी को दे सकता है, अथवा बिना कर्म किये किसी को राजा, किसी को रङ्क, किसी को विद्वान्, किसी को मूर्ख, किसी को गऊ, किसी को सिंह, किसी को मृग, किसी को शूकर, स्वेच्छा से जो चाहे बना सकता है—ये सब बातें न्याय की कसौटी पर कसने से थोथी, मिथ्या तथा धर्म-विरुद्ध लगती हैं। मेरा वैदिक धर्म इस प्रकार की न्याय-विरुद्ध बातों से सर्वथा ऊँचा है और स्त्री-पुरुषों के समान अधिकारों का विधान करता है। सार यह कि मेरा धर्म न्याय मानने, न्याय करने और न्याय परखने की सच्ची कसौटी है।

समाज-व्यवस्था—मेरा धर्म यह शिक्षा देता है कि यदि कोई ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर खोटे कर्म करता है तो उसे गुण, कर्म, स्वभावानुसार ब्राह्मण न मानकर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अतिशूद्र मानना चाहिए। इसी प्रकार शूद्र तथा अतिशूद्र को भी वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण तक बनने का अधिकार देता है। जन्म से किसी को ऊँचा-नीचा नहीं माना गया। यह गुण-कर्म-स्वभाव अनुसार ही वर्ण प्रदान करता है।

सबको विद्या-प्राप्ति का अधिकार—मेरा धर्म यह भी सिखाता है जैसे पुरुष सत्य शास्त्रों के ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष-पद को प्राप्त कर सकता है, इसी प्रकार स्त्रियाँ भी ज्ञान प्राप्त करके वैराग्य द्वारा मुक्तिधाम तक पहुँच सकती हैं। स्त्री व शूद्रों को विद्या-प्राप्ति का अधिकार नहीं है, उन्हें मूर्ख ही रहना चाहिए, भगवान् ने इन्हें मूर्ख रहने के लिए ही पैदा किया है—इस प्रकार की न्याय-विरुद्ध बातों की मेरे धर्म में क़तई कोई गंध नहीं है। अतः मेरा धर्म मुझे प्यारा है और प्राणीमात्र को भी इससे प्रेम करना चाहिए।

मनुष्यों को धार्मिक बनने का उपदेश वेदशास्त्रों में भली-भाँति मिलता है। धार्मिक बनने का प्रयोजन परमात्मा की प्राप्ति बतलाया गया है। परमात्मा को सर्वत्र व्यापक माना गया है। जो लोग ईश्वर की सत्ता को मानते हैं वे यह भी मानते हैं कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। यद्यपि कुछ लोग ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानते हुए भी चौथे व सातवें आसमान (God In The Heaven) पर उसका निवास बताते हैं, परन्तु ईश्वर-विश्वासी कभी उसकी सर्वव्यापकता से इन्कार नहीं करते तथा परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति को मनुष्यमात्र के उद्धार का कारण मानते हैं। परमात्मा प्राप्त कैसे हो सकता है? इसके लिए विभिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न मार्ग माने हैं। कई लोगों का विचार है कि परमात्मा व जीवात्मा को मिलाने के लिए एक तीसरे व्यक्तित्व की आवश्यकता है; बिना उसके जीवात्मा की परमात्मा तक पहुँच कठिन है। कई लोग मनुष्य आदि प्राणियों की बलि को ईश्वर-दर्शन का साधन मानते हैं। परन्तु मेरा धर्म बताता है कि परमात्मा को प्राप्त करने के लिए आत्मा को न किसी व्यक्ति (Mediator, Prophet) की आवश्यकता है और न किसी अन्य वस्तु की। आत्मा के भीतर परमात्मा सदा व्यापक रहता है। अविद्या, राग, द्वेष आदि के कारण आत्मा प्रभु के साक्षात्कार करने में असमर्थ होता है।

ईश्वर-मिलाप कैसे?—यम-नियम आदि योग-अंगों के द्वारा राग-द्वेष आदि का नाश करके आत्मा को परमात्मा के दर्शन हो जाते हैं। तब उपनिषद् के इस कथन के आधार पर कि 'परमात्मा के दर्शन हृदय-आकाश में होते हैं' उसकी प्राप्ति के लिए उपर्युक्त साधनों की आवश्यकता नहीं। जैसे परमात्मा मन्दिर में, वैसा हृदय में। किसी ने कहा भी है—

दिल के दर्पण में धरी तस्वीरे-यार
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली

मेरा धर्म ही यह निश्चय करा सकता है कि ईश्वर एक है, सर्वव्यापक है, अभेद है, अच्छेद्य है, सबसे महान् और सर्वशक्तिमान् है। वह सदा एकरस रहता है। सबको सब स्थानों पर मिल सकता है। ईश्वर के ऐसे गुण केवल वैदिक धर्म में मिलते हैं, अतः वह मुझे प्यारा है।

प्राणीमात्र से प्यार की शिक्षा—मेरा धर्म मुझे प्राणीमात्र से प्रेम करना सिखाता है। किसी की जान लेकर ऊँचा चढ़ना नहीं सिखाता। संसार के लोग दूसरों के अस्थि-पिंजरों पर खड़ा होकर ऊँचा बनना चाहते हैं, परन्तु मेरा धर्म अपने अस्थि-पिंजरों पर दूसरों को खड़ा करके ऊँचा बनना सिखाता है। मैं इसमें चमत्कार देखता हूँ जो अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आता। इसलिए मैं वैदिक धर्म से प्यार करता हूँ और संसार के लोगों को इसे स्वीकार करने का निमन्त्रण देता हूँ ताकि वे वास्तविक शान्ति को प्राप्त कर सकें।[१]

---

१. आर्य मुसाफ़िर' उर्दू मासिक सन् १९३१ के जुलाई के अंक में प्रकाशित।

—प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु कृत वैदिक ज्ञान धारा से

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

पुस्तक	मूल्य
आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान्	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
बोध-कथाएँ	१८-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्त्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

MAHATMA ANAND SWAMI

Title	Price
Anand Gayatri Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life ?	30-00

महर्षि दयानन्द

पुस्तक	मूल्य
व्यवहारभानु	४-००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१-५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१-५०

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

पुस्तक	मूल्य
महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीतिदर्पण	६०-००
विदुरनीति: (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह-पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति-सुधा	२५-००
अथर्ववेद सूक्ति-सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति-सुधा	१२-००
ऋग्वेदशतकम्	१०-००
यजुर्वेदशतकम्	१०-००
सामवेदशतकम्	१०-००
अथर्ववेदशतकम्	१०-००
भक्ति संगीतशतकम्	६-००
चमत्कारी औषधियाँ	१५-००
घरेलू औषधियाँ	१५-००
चतुर्वेदशतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रभात-वन्दन	८-००
प्रार्थना-प्रकाश	८-००
शिवसंकल्प	८-००
प्रार्थनालोक (सजिल्द)	४०-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद-सौरभ — १२-००
सत्यार्थप्रकाश (सा०) — १२५-००
सत्यार्थप्रकाश (विशेष) — २००-००

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य — १५०-००
वैशेषिकदर्शन भाष्य — १२५-००
सांख्यदर्शन भाष्य — १२५-००
योगदर्शन भाष्य — १००-००
वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र) — १८०-००
मीमांसादर्शन — ३५०-००
सांख्यदर्शन का इतिहास — २५०-००
सांख्य सिद्धान्त — २००-००
वेदान्तदर्शन का इतिहास — २००-००
प्राचीन सांख्य सन्दर्भ — १००-००
वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह) — २५०-००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे — ४०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद — ४०-००
वेद मीमांसा — ५०-००
दीप्तिः — ८०-००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड) — १८००-००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे — १५-००
विवाह और विवाहित जीवन — १८-००
जीवात्मा — ४०-००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश — २५-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार — १५०-००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज — ६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खण्ड) — २४०-००
आर्य सूक्ति-सुधा — १२-००
वैदिक ज्ञान-धारा — ८०-००

डा० भवानीलाल भारतीय

कल्याण मार्ग का पथिक — प्रेस में
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्डों में) — ६६०-००
आर्यसमाज के बीस बलिदानी — १५-००
श्याम जी कृष्ण वर्मा — २४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय — २५-००
बिखरे मोती — ४०-००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा — १०-००
वैदिक धर्म — २५-००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप — प्रेस में
सहेलियों की वार्ता — २०-००

ले० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनु० पं० घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित — २५०-००

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका — १२५-००

पं० रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि — ६०-००

आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल — ५०-००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति-सुधा — ४०-००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप — ५०-००

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य — २५-००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ? — ४-००

प्रो० नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम — ३५-००
सन्ध्या विनय — ६-००

पं० नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर — २५-००

पं॰ वा॰ विष्णुदयाल (मॉरीशस)

वेद भगवान् बोले १५-००

आ॰ उदयवीर शास्त्री

आचार्य शंकर का काल १०-००

पं॰ वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता ४५-००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेरक बोध-कथाएँ १५-००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार गायत्रीशतकम् ३-००

पं॰ सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद् भगवद्गीता १५-००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका ४-००

पंचयज्ञप्रकाशिका ८-००

वैदिक सन्ध्या २-००

सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य) १२-००

सन्ध्या-हवन दर्पण (उर्दू) ८-००

Vedic Prayer 3-00

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.) 800-00

Coinage in Ancient India (Two Vols.) 600-00

Geometry in Ancient India 350-00

Brahmgupta and His Works 350-00

God and His Divine Love 5-00

The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman In Press

Speeches, Writings & Addresses

Vol. I : VINCITVERITAS 150-00

Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE 150-00

Vol. III : DAYANAND : A PHILOSOPHER 150-00

Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS 150-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०-००

महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी) २५-००

बाल साहित्य

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द ५-००

गुरु विरजानन्द ४-५०

स्वामी श्रद्धानन्द ४-५०

धर्मवीर पं॰ लेखराम ५-००

मुनिवर पं॰ गुरुदत्त ५-००

स्वामी दर्शनानन्द ५-००

प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज ४-५०

स्वामी स्वतन्त्रानन्द ४-५०

महात्मा नारायण स्वामी ५-५०

देवतास्वरूप भाई परमानन्द ५-५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा पच्चीसी ९-००

बाल शिक्षा २-५०

सुनील शर्मा

हमारे बालनायक ८-००

देश के दुलारे ९-००

हमारे कर्णधार ८-००

सत्यभूषण वेदालंकार एम॰ ए॰

नैतिक शिक्षा—प्रथम २-५०

नैतिक शिक्षा—द्वितीय ३-००

नैतिक शिक्षा—तृतीय ४-५०

नैतिक शिक्षा—चतुर्थ ५-००

नैतिक शिक्षा—पंचम ४-५०

नैतिक शिक्षा—षष्ठ ५-५०

नैतिक शिक्षा—सप्तम ५-५०

नैतिक शिक्षा—अष्टम ५-५०

नैतिक शिक्षा—नवम ८-००

नैतिक शिक्षा—दशम ८-००

नीरू शर्मा		**डा॰ देवव्रत आचार्य**	
आदर्श महिलाएँ	८-००	योग शिक्षा–प्रथम	१२-००
हरिश्चन्द्र विद्यालंकार		योग शिक्षा–द्वितीय	१०-००
वैदिक शिष्टाचार	३-००	योग शिक्षा–तृतीय	१०-००
पं॰ रामगोपाल विद्यालंकार		योग शिक्षा–चतुर्थ	१०-००
दयानन्द चित्रावली	२५-००	**म॰ नारायण स्वामी**	
ब्र॰ नन्दकिशोर		प्राणायाम-विधि	२-००
आचार्य गौरव	५-००		

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयां आपको उपलब्ध हों तो पुड़िया आदि की क्या जरूरत है ।

घर का वैद्य–प्याज	७-००	घर का वैद्य–हल्दी	७-००
घर का वैद्य–लहसुन	७-००	घर का वैद्य–बरगद	७-००
घर का वैद्य–गन्ना	७-००	घर का वैद्य–दूध-घी	७-००
घर का वैद्य–नीम	७-००	घर का वैद्य–दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य–सिरस	७-००	घर का वैद्य–हींग	७-००
घर का वैद्य–तुलसी	७-००	घर का वैद्य–नमक	७-००
घर का वैद्य–आँवला	७-००	घर का वैद्य–बेल	७-००
घर का वैद्य–नींबू	७-००	घर का वैद्य–शहद	७-००
घर का वैद्य–पीपल	७-००	घर का वैद्य–फिटकरी	७-००
घर का वैद्य–आक	७-००	घर का वैद्य–साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य–गाजर	७-००	घर का वैद्य–अनाज	७-००
घर का वैद्य–मूली	७-००	घर का वैद्य–फल-फूल	७-००
घर का वैद्य–अदरक	७-००	घर का वैद्य–धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध, कीमत ४५ रुपये प्रत्येक

घर का वैद्य (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)
घर का वैद्य (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)
घर का वैद्य (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)
घर का वैद्य (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)
घर का वैद्य (शहद, अनाज, साग-भाजी, फल-फूल, फिटकरी)
घर का वैद्य–धूप-पानी ४०-००

अन्य प्रकाशन

डॉ॰ सत्यकेतु विद्यालंकार

आर्यसमाज का इतिहास (भाग १)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग २)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ३)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ४)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ५)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ६)	३२५-००
आर्यसमाज का इतिहास (भाग ७)	३२५-००
प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग	५६-००
दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	५८-००
पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया का आधुनिक इतिहास	७७-००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय संस्कृति	५८-००
प्राचीन भारत	६९-००
भारतीय संस्कृति का विकास	७७-००
प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन	५६-००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार	५८-००
एशिया का आधुनिक इतिहास	११०-००
यूरोप का इतिहास	१२०-००
समाजशास्त्र	८०-००
चाणक्य	६५-००
पतन और उत्थान	३५-००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	९०-००
भारत का इतिहास	११०-००
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ	१७५-००
मध्यकालीन भारत	१३०-००
प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	३२५-००
Political Thought of Swami Dayanand	150-00

डॉ॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

एकादशोपनिषद्	१२५-००
उपनिषत् प्रकाश	११०-००
श्रीमद् भगवद्गीता	१०५-००
संस्कारचन्द्रिका	१२०-००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	९५-००
होमियोपैथिक चिकित्सा	१२५-००
होमियोपैथिक चित्रण	१२५-००
होमियोपैथी का क ख ग	१००-००
होमियोपैथी के मूल सिद्धान्त	८०-००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०-००
From old age to youth through Yoga	80-00
चतुर्वेद गंगालहरी	९५-००
मेरी नानी की कहानी	३५-००
मां और बच्चा	२५-००

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

अग्निहोत्र सर्वस्व	१०-००
उपहार सर्वस्व	५-००
मृत्युञ्जय सर्वस्व	१०-००
स्वाध्याय सर्वस्व	१२-००
उपनयन सर्वस्व	१०-००
दो पुटन के बीच	५-००
ए लविंग टोकन	५-००

महर्षि दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश	५०-००
संस्कारविधि	१०-००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	४०-००
उपदेशमञ्जरी	१०-००

पं॰ रामनाथ वेदालंकार

सामवेद (पूर्व॰, उत्तरार्ध)	४००-००
आर्ष ज्योति	५०-००
वेद मञ्जरी	५०-००
वैदिक नारी	४०-००

स्वामी योगेश्वरानन्द

बहिरंग योग	७०-००
आत्मविज्ञान	८०-००
ब्रह्मविज्ञान	१००-००
दिव्य ज्योति विज्ञान	४०-००
प्राण विज्ञान	३०-००
दिव्य शब्द ज्ञान	६०-००
निर्गुण ब्रह्म	३०-००
व्याख्यानमाला (५ भाग)	१५०-००
हिमालय का योगी -I	८०-००
हिमालय का योगी -II	७५-००
First Step to Higher Yoga	70-00
Science of Soul	80-00
Science of Divinity	100-00
Science of Divine Light	45-00
Science of Vital Force	40-00
The Essential Colourlessness of the Absolute	40-00
Science of Divine Sound	40-00
Beads of Sermons	30-00
Himalaya Ka Yogi-I	80-00
Himalaya Ka Yogi-II	80-00

डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी

सुखी जीवन	१८-००
सुखी गृहस्थ	१२-५०
सुखी परिवार	१८-००
आचार शिक्षा	१०-००
नीति शिक्षा	१०-००
वेदों में नारी	२०-००
सुखी समाज	१८-००
वैदिक मनोविज्ञान	१८-००
यजुर्वेद सुभाषितावली	२५-००
सामवेद सुभाषितावली	२५-००
अथर्ववेद सुभाषितावली	३५-००
ऋग्वेद सुभाषितावली	४०-००
वेदों में आयुर्वेद	९०-००
Vedic Samdhya & Agnihotra	30-00
The Essence of the Vedas	200-00

चमूपति एम॰ ए॰

योगेश्वर कृष्ण	४०-००
वैदिक स्वर्ग	३०-००
वैदिक दर्शन	१५-००
अनादि तत्त्व	२५-००
विचार वाटिका (दो भाग)	१००-००

पं॰ भगवद्दत्त

सविता देवता	५९-००
बृहस्पति देवता	६०-००

पं॰ शिवकुमार शास्त्री

श्रुतिसौरभ	६०-००

आचार्य अभयदेव वेदालंकार

वैदिक विनय	१२५-००

स्वामी समर्पणानन्द

पञ्चयज्ञप्रकाश	१५-००
श्रीमद् भगवद्गीता	२०-००

पं॰ सुरेन्द्रकुमार

विशुद्ध मनुस्मृति	८०-००
मनुस्मृति	१५०-००

Svami Satya Prakash Sarasvati

Rigveda (13 vols)	2700-00
Athervaveda (4 vols)	900-00
Samveda (2 vols)	450-00
Yajurveda (1 vol)	225-00

स्वामी जगदीश्वरानन्द

देवर्षि दयानन्द चरित	२५-००
सामवेद भाष्य	१००-००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

भूमिकाभास्कर (दो खण्ड)	३००-००
सत्यार्थभास्कर (दो खण्ड)	७००-००
संस्कारभास्कर	१५०-००
तत्त्वमसि	५०-००
आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता	६०-००
Ishopanishad	25-00
Brahmasutra	150-00
गौ की गुहार	१५-००
आर्य सिद्धान्तविमर्श	२०-००

वीरेन्द्रसिंह परमार

जीवात्मा ४०-००

मैक्समूलर

भारत की विश्व को देन १३०-००

प्रो॰ रामविचार एम॰ ए॰

वेदसन्देश (दो खण्ड) १००-००

रमेश मुनि वानप्रस्थ

वैदिक यज्ञानुष्ठानविधि: ८०-००

डॉ॰ देवव्रत आचार्य

आसन प्राणायाम वैज्ञानिक विवेचन एवं चिकित्सा ४०-००

रामप्रकाश भसीन

मानव जीवन की सफलता के साधन २०-००

सुख सागर १५-००

पी॰ एन॰ ओक

आगरा का लालकिला हिन्दू भवन है ३५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–१ ४५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–२ ४५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–३ ४५-००

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास–४ ४५-००

दिल्ली का लालकिला लालकोट था २५-००

ताजमहल मन्दिर भवन है ३५-००

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें ४५-००

कौन कहता है अकबर महान् था? ५०-००

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय ३०-००

वीर सावरकर साहित्य

१८५७ का भारतीय स्वातन्त्र्य समर ११०-००

मेरा आजीवन कारावास ९५-००

कालापानी ३५-००

मोपला (उपन्यास) ऐतिहासिक १६-००

गोमान्तक (उपन्यास) ऐतिहासिक १६-००

हिन्दुत्व (नया संस्करण) १५-००

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

आर्यसमाज सिद्धान्त और प्रगति ४०-००

आर्यसमाज संघर्ष और समस्याएँ ३५-००

A critical study of Philosophy of Dayanand 50-00

डॉ॰ भवानीलाल भारतीय

नवजागरण के पुरोधा: दयानन्द ६०-००

ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी २०-००

डॉ॰ ओमप्रकाश वेदालंकार

मृत्यु से अमृत की ओर १३-००

आर्यों का परम धर्म ७-००

डी॰ ए॰ वी॰ प्रकाशन

महर्षि दयानन्द और उनके अनुवर्ती ५०-००

सूक्तियाँ (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी) ४०-००

प्रेरक प्रवचन (महात्मा हंसराज) ३५-००

क्रान्तिकारी भाई परमानन्द ५०-००

Swami Dayanand 35-00

Story of My Life (Lajpat Rai) 50-00

Mahatma Hansraj 35-00

Rishi Dayanand Saraswati 30-00

Reminiscences and Reflections of a Vedic Scholar (Prof. Satyavrat) 60-00

The Arya Samaj (Lajpat Rai) 50-00

Wisdom of Vedas 35-00

Swami Dayanand through Non Arya Samajist Eyes 75-00

Chips from a Vedic Workshop 80-00

आयुर्वेद-स्वास्थ्य

आयुर्वेद नवनीत ६५-००

आयुर्वेद चिकित्सा सार ३०-००

भोजन द्वारा चिकित्सा ४०-००

शाकाहारी व्यंजन विधियाँ ५०-००

अनुभूत चिकित्सा योग ३०-००

ब्र॰ नन्दकिशोर

मातृ गौरव ५-००

सत्संग गौरव ६-००

पितृ गौरव ८-००

विजय बिहारीलाल माथुर

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या (हिन्दी) १५-००

आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या (अंग्रेजी) १५-००

विविध प्रकाशन

ऋग्वेदभाष्यम् (पांच भाग)	५८०-००
अथर्ववेदभाष्यम् (दो भाग)	२२५-००
सामवेदभाष्यम् (एक भाग)	९०-००
यजुर्वेदभाष्यम् (एक भाग)	१२५-००
वैदिक सम्पत्ति	१२५-००
कुलियात आर्य मुसाफिर	२००-००
मृत्यु और परलोक	१६-००
योग रहस्य	१४-००
पं० रामचन्द्र देहलवी लेखावली	१८-००
आर्य पर्व-पद्धति	१६-००
आर्य सिद्धान्त सागर	१२५-००
वैदिक यज्ञ-दर्शन	६०-००
संगीत रत्न प्रकाश	५०-००
मोक्ष द्वार	२५-००
What is Arya Smaj	30-00
Journey of the Soul	35-00
Science in the Vedas	25-00
Rigveds (5 Vols.)	420-00
Atharvveda (2 Vols.)	130-00
Samveda	65-00
Yajurveda	125-00

चित्र

स्वामी दयानन्द १६"X२२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी) १८"X२२"	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन) १८"X२२"	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द १८"X२२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द १८"X२२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम १८"X२२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द १८"X२२" एक रंग	३-००
गुरुदत्त विद्यार्थी १८"X२२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज १८"X२२" एक रंग	३-००

कैलेण्डर १९९५

महर्षि दयानन्द का झण्डे वाला बहुरंगी चित्र ६-००

(५००-०० रु० सैकड़ा)

पुस्तक परिचय

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती । शंकराचार्य मूलतः वेदान्ती या अद्वैतवादी नहीं थे । ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इसका संकेत मिलता है । स्वामी जी ने इस मान्यता की पुष्टि में शंकराचार्य के ग्रन्थों से अनेक प्रमाण उद्‌धृत किये हैं ।

आर्यसमाज के बीस बलिदानी—डॉ० भवानीलाल भारतीय । आर्यसमाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाने वाले उन बीस आर्यों की संक्षिप्त बालोपयोगी जीवनियाँ, जिन्हें पढ़कर बच्चों, नवसाक्षरों तथा प्रौढ़ों को सत्प्रेरणा मिलेगी । पुरस्कार, उपहार देने योग्य ।

आचार्य गौरव—ब्र० नन्दकिशोर । आचार्य-शिष्य सम्बन्धों की मार्मिक झांकी प्रस्तुत की गई है । जहां शिष्यों को कर्त्तव्य-बोध कराया गया है, वहीं आचार्यों को राष्ट्र-निर्माण की दिशा भी दिखाई गई है ।

प्रेरक बोध कथाएँ—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति । इस संकलन की कथाएँ जितनी वामन (लघु) हैं, उनका उद्देश्य और प्रभाव उतना ही विराट् एवं व्यापक है । प्रत्येक कथा अपनी अमिट छाप छोड़ती है और पाठक को वैसा ही कुछ करने के लिए यत्नशील बनाती है ।

वेद भगवान बोले—पं० विष्णुदयाल (मॉरीशस) । वेद वैदिक संस्कृति का मूलाधार है । संसार में जितना ज्ञान-विज्ञान, विद्याएं और कलाएं हैं, उन का आदि स्रोत वेद हैं । मॉरीशसवासी पं० विष्णुदयाल के वेदों पर किए गये महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह ।

दयानन्द चित्रावली—पं० रामगोपाल विद्यालंकार । महर्षि दयानन्द की जीवन-घटनाओं से सम्बन्धित बड़े साइज के ३० से भी अधिक रंग-बिरंगे चित्रों से सुसज्जित । ऋषि की प्रभावशाली उपदेशप्रद घटनाओं का वर्णन भी बड़े अक्षरों में किया गया है । पाठशाला में विद्यार्थियों को पुरस्कार देने योग्य ।

विवाह और विवाहित जीवन—पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय । विवाह तथा विवाहित जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों पर इस ग्रन्थ में बड़ा रोचक विश्लेषण है । यह पुस्तक नई-नवेली दुल्हन से भी सुन्दर और रोमांचक है ।

गीतसागर—पं० नन्दलाल वानप्रस्थी । आर्यसमाज के अनेक कवियों व भजनोपदेशकों की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन । भजनों व गीतों में ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना-उपासना, अछूतोद्धार, देशभक्ति, समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा, पाखण्ड-खण्डन आदि का समावेश है ।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।